



## लोक-वार्ता एवं लोक-साहित्य

प्रयोग की समस्या

'लोक-वार्ता' शब्दों के 'फोल्क्लोर' (Folklore) शब्द का पर्यायवाची है। हिन्दी में इसके अन्वय का अर्थ अथवा अर्थ ही कृष्णलम्ब युक्त एवं डॉ० गोखलेकराज्य अग्रवाल को है। किन्तु अन्वय 'फोल्क' का हिन्दी पर्याय 'लोक' नहीं अपितु विपदायी है, उसी भाँति 'लोक-वार्ता' शब्द 'फोल्क्लोर' से अर्थिक विस्तृत भाषा को बहान करवा है।

'लोर' (lore) शब्द "द्वैलो सेकलम Jar से निकला है और इसका अर्थ होता है वह जो सीखा जाय। इस अन्वय 'फोल्क्लोर' का शाब्दिक अर्थ 'प्रसिद्ध लोकों का ज्ञान' है।"

परंपरागत विधानों के अनुसंधान स्वरूप रूप से अन्वय दो वर्गों में विभक्त है—एक उच्च वर्ग और दूसरा निम्न वर्ग। इसी निम्न वर्ग में सर्व-सामान्य जनता की संस्कृति, परम्परागत विरवात, किन्नरनियत, आचार विचार, गीत, कथाएँ, कथाकृत, नृत्यादि मिलते हैं। उच्च जातिवर्ग में उपलब्ध होने वाले अत्यन्त कम के इन्हीं विरवातों, कथाएँ, अर्थों, अथवा भावनाओं, कथाओं, गीतों, कथाकृतों आदि को बेलकर कथावित् इन्वयु० के नाम से १० व० १८४६ में प्रथम बार 'फोल्क्लोर' शब्द का प्रयोग किया।

१ एम्पाइरिस्टोपेटिका कॉफि सीप्राक साहस्येक वि २ दृष्य शब्द

टीक इसी वर्ष अगस्त मास में विलियम बॉन टम्स ने शब्द 'फोफ्लोर' शीघ्र लेख प्रकाशन के लिए प्रेषित किया जो यूरोप अनेक मापाओं में हेर-फेर के साथ उद्धृत किया गया। इसी शब्द का अर्थ 'लोक-ज्ञान' अथवा 'लोक-विद्या' भी है। किन्तु हिन्दी 'लोक-बाता' विशेष रूप से प्रचलित है। सन् १६१ में श्री म. पोट्टर ने मराठी में 'फोफ्लोर' के लिए 'लोक-विद्या' शब्द प्रयोग किया, जो अधिक प्रचार में न आ सका। श्री गो. म. बरोहाकर ने 'बन-कथा' का प्रयोग किया परन्तु मछली के पारिभाषिक शब्द 'बन-मुक्ति' शब्द उपलब्ध है। 'फोफ्लोर' के लिए 'लोक-ब' अथवा 'लोक-साहित्य' शब्दों का प्रयोग भी प्रायः मूल से किया जाता है। किन्तु पर्याय का निश्चित स्वरूप निश्चित नहीं हो सका है, अतः समय पर इसी प्रकार के प्रयोग सम्मिलित करते रहेंगे। यहाँ तक मछली प्रत्यक्ष है जो कि ग. कर्ने ने 'लोक-विद्या' शब्द ही प्रचलित करने का प्रयत्न किया है। डॉ. बासुदेवराय अग्रवाल ने हिन्दी में वैष्णवी 'बार्ता' सम्बन्धी ग्रन्थों के अन्वय (जिनमें वैष्णवी की बार्ता, परु बार्ता, आदि 'फोफ्लोर' का 'लोक-बार्ता' पर्याय स्वीकार किया है। इस विषय में म. विद्या-वेदा श्री मोलानाथ तिवारी ने हाल ही में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनके मतानुसार 'लोक-बार्ता' में अधिक-से-अधिक 'लोक-कथा' शब्द बहक करने की क्षमता है। (द्विगल में 'बाता' अथवा 'बाता' प्रयोग कथा के अर्थ में ही होता है।) संस्कृत-साहित्य में इसी शब्द का 'अकबाह' या 'किन्दन्ती' है (संस्कृत शब्दार्थ-कोश, २. ११)। संस्कृत शब्दार्थ भी आये ने 'लोक-बाता' का अर्थ 'रिपोर्ट' या 'पत्रिका स्वर' दिया है। इसी शब्द के लिए 'लोक-संस्कृति' का प्रयोग डॉ. हषापीप्रसाद द्विवेदी ने किया है जो 'फोफ्लोर' का प्रयत्न आशय व्यक्त नहीं करता है। श्री तिवारी की डॉ. मुनीश्वर पांडुर्मा द्वारा प्रयुक्त 'लोक-कथा' (फोफ्लोर) के लिए विशेष आग्रह है। मुनीश्वर बाबू के शब्दों में "पितृ-परम्परागत जीवन-यात्रा की प्रकृति"

अनुष्ठानों, विस्वास-विचारों तथा वाङ्मय से अपने लौकिक को प्राप्त करती है उन्हें अंग्रेजी में 'फोल्कलोर' कहते हैं। इस शब्द का प्रतिशब्द हमने 'लोक-कथन' ही बना लिया है।<sup>१</sup> 'लोक-के लिए जैसे लोक-शास्त्र, लोक-विज्ञान, लोक-परम्परा, लोक-लोक-प्रवाह, लोक-पथ लोक-विधान, लोक-संग्रह, लोक-अर्थ, लम्हों की ओर भी श्री सिवाजी ने संकेत किया है, किन्तु आग्रह के प्रति ही है।"

लोक-वार्ता शब्द हिन्दी में अमराः अपमा स्थान निर्धारित कर । बहीन शब्दों के तुल्यव और आग्रह से 'लोक-वार्ता' के प्रति र् अस्त्या कम नहीं हो सकती। कुछ वर्ष पूर्व श्री कृष्णाचन्द्र तदुपस्थानी से प्रकाशित 'लोक-वार्ता' त्रैमासिक ने इसकी बड़े कर दी है और आधुनिक साहित्य की बहीन रचनाओं में इसका प्रयोग इसके अस्तित्व की स्थायित्व प्रदान करने में सफल हुआ २५ सुविधा के लिए 'फोल्कलोर' के लिए हम 'लोक-वार्ता' शब्द लेंगे।

ता एक शास्त्र है

। शास्त्री के मध्य में पारंपरिक विद्वानों ने विद्वही शक्ति की के प्रति अन्वेषण अर्भ अरम्भ किया। प्राचीन भारतीय वाङ्मय, -विज्ञान का विज्ञान, म्पाओं का तुलनात्मक अन्वेषण, पं-संस्कृत, देश, आदि भारतीय नीति-कथा-साहित्य के महत्त्वपूर्ण का अन्य की कथाओं से पारस्परिक सम्बन्ध, आदि की ओर विद्वानों की दृष्टि नों-नों माया विज्ञान समाज-विज्ञान, वृत्त-शास्त्र जैसे विषयों षात होने लगा; लोक-वार्ता की अमराः एक विज्ञान का रूप प्राप्त होता

राजस्थानी कहावतें (भाग—१), २० १ कश्चकता वृ  
सम्मोक्षण पत्रिका (लो० सं० वि०) लोक-कथन और लोक-स  
पृष्ठ ३६६

गया, क्योंकि उक्त विद्वानों की अधिकांश सामग्री लोक-वाता से ही सम्पन्न है। लोक-वाता का स्वरूप अस्तित्व है। यह एक शास्त्र है और उत्तम व्यवस्थित रूप से अध्ययन होता चाहिए, यह निश्चित होना ही अधिक समय नहीं लगा। सन् १८५८ में क्लेमेंट हेरिचरी ने उक्त सभी विद्वानों में सम्बन्ध स्थापित करके मनुष्य की भाषा, रहन-सहन, आचार-विचार, जाति-सम्बन्धी विशिष्टता, आदि का उनमें सम्बन्ध करने के लिए विशेष आग्रह किया। सन् १९८८ में भी एल. गोम ने 'फोक्सोर इण्डिया डिस्ट्रिक्ट्स साइन्स प्रिन्सिपल्स इण्डिया' का प्रकाशन किया कि लोक-वाता इतिहास का स्वरूप विषय है, जिसके अपने विषय और सिद्धान्त हैं। उक्त मान्यताओं को अन्य शास्त्रों की मान्यताओं की भाँति धरना चाहिए। पर्याप्त विद्वानों ने पुराणों में गोम की स्थापनाओं का स्वागत नहीं किया, किन्तु नृत्य-शास्त्र के क्षेत्र में लोक-वाता का भी अपना महत्त्व है, यह स्वीकार कर लिया। सन् १९२२ में आर० आर० मैरेडिथ का 'साउथवेस्टी एण्ड फोक्सोर' प्रकाशित हुआ। उसने लिखा है कि लोक-वाता का केवल समाज शास्त्रीय पक्ष महत्त्व करना एकदली इतिहास है। उक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अध्ययन किया जाना चाहिए, क्योंकि लोक-वाता विज्ञान विज्ञान नहीं है। बल्कि यह अध्ययन जितना आधुनिक है उतना ही उक्त आधुनिक पक्ष भी अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विषय है।

### गतिशील विज्ञान

लोक-जीवन की भाषा सर्वत्र प्रचलित है। परम्पराएँ प्रवाद-वेग में चल रही हैं। वे बड़े बड़ों में प्रचलित हो 'लोक' के बीच में गत्यात्मक बनी रहती हैं। पुनी ने अपने पाठों और व्याख्यान के मध्य लोक-वाता की गंगा बह रही है। किसी समय-विशेष में ही लोक-वाता का जन्म नहीं होता। यह सर्वव्यापी, सर्वदेशीय और सर्वसम्पन्न है। शिक्षा का विकास ने इसे अत्यन्त प्रभावित किया है। शिक्षित जन के आधुनिक अधिष्ठान, मनु

और कविवादी जन में उलझ अस्तित्व गहरा है। समग्र रूप से लोक-वार्ता लोक-मात्र का विषय है। 'लोक' की अपरिमित शक्ति, साहस, मनोमात्र, मर्मकार्य, विप्रवास, रमा-रूप, परम्पराएँ, अहास, टोन-टोटके, अनुष्ठान, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, गति-रूपार्य, वेप-भूषा, आदि संयुक्त रूप से लोक-वार्ता के वेतन अस्तित्व की घोषणा करते हैं। बोयकिन ने कहा है—

"Folklore is not something far away and long ago but real and living among us."

(लोक-वार्ता अत्यधिक दूर और अत्यन्त प्राचीन दोनों मनु नहीं है वह तो हमारे मध्य सत्य और जीवित है।)

क्योंकि— Here the past has something to say to the present and bookless world to a world that likes to read about itself concerning our basic oral and democratic culture as the root of arts and as a side-light on history -<sup>1</sup>

(यहाँ भूतकाल को वर्तमान से और पुस्तकहीन समाज को उस समाज से कुछ कहना है जो अपने ही विषय में पढ़ना चाहता है, जिसका सम्बन्ध हमारे मौखिक और लोकतान्त्रिक संस्कृति की मूल कलाओं के प्रारम्भिक सौ और इतिहास के एक अंग के प्रकाश से है।)

लोक-वार्ता में लोक की परम्परागत भावनाएँ एवं वेतनागत सभी अभिव्यक्तियों का सेजा-बोला निहित है। अतः लोक-वार्ता केवल प्राचीन, अशुभ मातृ कवियों का सम्पन्न ही प्रस्तुत नहीं करता बल्कि जीवित लोक-भावों, लोक-अभिव्यक्तियों एवं उनकी प्रवहमान प्रक्रियाओं का भी सम्पन्न करता है।

लोक-वार्ता का विस्तार

लोक-वार्ता के विस्तार के सम्बन्ध में सी एस० बर्न के एक उद्धरण प्र अनुवाद डॉ० सत्येन्द्र ने इस प्रकार किया है—“यह एक जातिबोधक अमेरिकन लोकबोध (पॉपुलर इड) की भूमिका, पृष्ठ १५

राम्य की मौखिक प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत विखड़ी बातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत बातियों के अर्ककृत समुदायी में अथ शिष्ट विवाह, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कथार्थ आती हैं। प्रकृति के क्षेत्र तथा वह अगत के सम्बन्ध में, भूत प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषयों में, बानू, रोना, सम्मोहन, बर्षी-करव, ठाकीब, मत्स्य, शकुन, योग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आग्नि तथा असन्न्य विवाह इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्पत्ति-विघ्न, बालकभक्षण तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और स्वीकार, मुद्र, आलेख, मन्त्र-व्यवहार, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म-याग्य, अथवा (लीब्रेट), लोक-कहानियाँ, लोके (बैलेट), गीत, किंवदन्तियाँ, परदेसियाँ तथा लोडियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पत्तियों के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है। यह कितना के हल की आकृति नहीं जो लोक-वार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु वे उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो कितना हल को भूमि खोदने के काम में लेने के समान करता है, जिस अथवा वंशी की बनाफ्त नहीं, बल्कि वे रोके जो मनुष्या समुद्र पर करता है, पुत्र अथवा निवास का निमात्र नहीं, बल्कि वह बलि जो उसके बनाते समान ही आती है और उसके उपयोग में जाने वाली के विवाह। लोक-ब्रह्मा वस्तुतः आग्नि मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे टयब, धर्म, विज्ञान तथा औपन के क्षेत्र में हुए हो, चाहे सामाजिक संघटन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, धर्म्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रवेश में।

हो वासुदेवराय अथवा लिल्ले हैं—

“लोक-वार्ता एक जीवित राज्य है—लोक का कितना जीवन है उसका ही लोक-वार्ता का विस्तार है। लोक में रहने वाला जन जन की भूमि और मौखिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उन जन की संस्कृति—इन तीन

खेती में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है, और लोक वार्ता का सम्बन्ध भी वहीं के साथ है।”

लेनिन का कथन है—“Folklore is material about the hopes and yearnings of the people.”

(लोक-वार्ता जन की आशाओं और आत्म मायों (स्नेह-सम्बन्धों) से सम्बन्धित सामग्री है।)

गांधीजी के शब्दों में Folklore is the literature of the people, but it belongs to an order of things that is passing away if it has not already done so.”

(लोक-वार्ता लोगों का साहित्य है, पर वह लुप्त होती हुई सामग्री, यदि अब तक लुप्त न हो चुकी हो, से सम्बन्धित है।)

लोक-वार्ता के विषयों की तात्त्विक काफी सम्बन्धी-बन्धी है। जर्म ने उन्हें तीन प्रधान समूहों में बाँटा है। डॉ० सत्वेन्द्र के अनुसार उनका वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है :

१ वे विश्वास और आश्चर्य-सम्पन्न जो सम्बन्धित हैं—

दृष्टी और आश्चर्य से,

बनस्पति जगत् से,

पशु जगत् से,

मानव से

मनुष्य-निर्मित वस्तुओं से,

आत्मा तथा दूसरे जीवन से,

पद-मात्रणी व्यक्तियों से,

शकुनों-अपराधुनों, मन्त्रिप्यवायिणियों, आश्चर्यवायिणियों से,

जादू टोनों से,

पेगों तथा स्थानों की कला से,



## २ रीति रिवाज—

सामाजिक तथा राजनीतिक संस्कारों,  
व्यक्तियुक्त जीवन के अधिष्ठाप, व्यवसाय, धन्ये तथा उद्योग,  
रिवाजों, ऋतु तथा त्यौहार,  
लेख-कृद तथा मनोरञ्जन ।

## ३ कहावतों गीत तथा कहावतें—

कहावतों (अ) जो सम्बन्धी मालमर कही जाती हैं ।

(आ) जो मनोरञ्जन के लिए होती हैं ।

गीत सभी प्रकार के,

कहावतें तथा परेशियों,

पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें ।

मौखिक तौर पर 'फोल्कलोर' (लोक-वाग्दानी) के विषयों का हम निम्न रूप में

भी वर्गीकरण कर सकते हैं

१ लोक-गीत, लोक-कथाएँ, कहावतें परेशियों आदि ।

रीति-रिवाज, त्यौहार, पूजा-अनुष्ठान, ऋतु आदि ।

२ बादू-वीणा, डोटक, मूत प्रेत-सम्बन्धी विश्वास आदि ।

४ लोक-नृत्य तथा नाट्य तथा आर्थिक अभिव्यक्ति ।

५ बालक-बालिकाओं के विभिन्न लक्ष्य, प्रार्थना एवं आदिवासीयों के लेख आदि ।

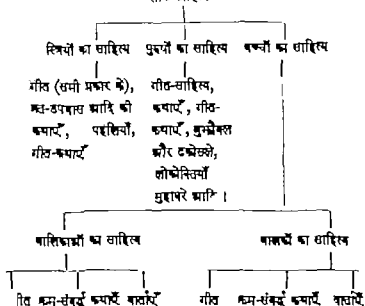
इस प्रकार लोक-वाग्दानी का क्षेत्र बहुत व्यापक है और लोक-साहित्य उसका एक अंग है । यहाँ मानव के विभिन्न आचार-विचारों का स्वर्ण लोक-साहित्य से देखा है वहाँ तक लोक-वाग्दानी के अन्व विषय लोक-साहित्य के लिए सहायक होते हैं ।

## लोक-साहित्य

लोक-साहित्य लोक-वाग्दानी का एक महत्त्वपूर्ण भाग है । इसके अन्तर्गत निम्न, पुरानी और बच्चों का गद्य एवं पद्य-वाच्य आता है । निम्न रूप

में हम इसका विस्तार प्रस्तुत कर सकते हैं—

लोक-साहित्य



कवियग विद्वानों का कथन है कि यह साहित्य मौखिक होता है अतः उसे 'साहित्य' की संज्ञा न देते हुए वाच्य कहा जाना चाहिए। महात्मा के बर्गीय वि० का यद्यथा ने 'साहित्य' की अर्थदा 'वाच्य' शब्द ही अधिक प्रसिद्ध किया जिसे केवल 'लोक' के सम्बन्ध में प्रयुक्त करना उचित सिद्ध है या। खन्नेरवरी की टीका करते हुए उन्होंने लिखा था कि प्राचीन, राष्ट्रीय और अग्रज लोक-कथाएँ, दन्त-कथाएँ, गीत, पदावे, छान्दियाँ, आदि आदि वाच्य की सही-सही शोच होना अभी शेष है। एक अन्य ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है, "स्त्रियों की कथाओं व बालिका के सो जाने पर केवल गार जाने वाली ओरियों 'वाच्य' के भागे हैं। स्त्रियों के गीत,

क्यामियों, बोधी आदि सभी प्रकार के समाज में सभी व्यक्तियों में उभरना होते हैं।<sup>१</sup> इसके स्पष्ट है कि 'सारस्वत' शब्द उस बोधि में बड़ी मात्रा जिसमें कि 'वाङ्मय' लिखा गया है।

लोक-साहित्य के सभी लक्षणों को स्पष्ट करता वहाँ जमीन नहीं है। संक्षेप में लोक-साहित्य किसी व्यक्ति-विराजित द्वारा निर्मित नहीं होता। उसके पीछे परम्परा होती है जिसका सम्पूर्ण समाज से मूल्य नहीं है। तबही व्यक्ति-व्यक्ति सामूहिक है। व्यक्तिगत से रहित समाज रूप में समाज की शक्ति को स्पष्ट करने वाली मौखिक अभिव्यक्तियों लोक-साहित्य की श्रेणी में आती हैं।

वहाँ तक लोक-बर्तों और लोक-साहित्य का सम्बन्ध है लोक-साहित्य का प्रथम भाग ही उसके क्षेत्र में आता है। ऐसा साहित्य भी है जो उसके बाहर है। 'लोक-बर्तों में केवल वही लोक-साहित्य समावेशित होता है जो लोक की आदिम परम्परा की किसी-किसी रूप में सुपडित रहता है। इस लोक-बर्तों-साहित्य का मुख्य केन्द्र साहित्य की दृष्टि से होता है जो सु-विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का क्षेत्र कह सकते हैं। इस प्रकार के लोक-साहित्य की व्याख्या करने में जब वह विद्वित हो कि उसके मूल में किसी आधिभौतिक तत्व का ही प्रतिबिम्ब है, कि आदिम मानव ने सर्व-प्रकार के शब्दों के संघर्ष को, आपस में सर्व-प्रकार तथा के प्रेम को आसपास साह-सर्व को ही विविध रूपों द्वारा साहित्य का रूप प्रकट कर दिया है, तो उसके वह रूप धर्म-गाथा का रूप प्रकट कर देता है। वाच्य यह है कि लोक-साहित्य का वह अर्थ जो रूप में प्रकट हो होता है कदाही, पर जिसके द्वारा जमीन होता है किसी ऐसे प्राकृतिक स्वरूप का रूप जो लोक-साहित्य-बर्तों ने आदिम आस में देला या और जिसमें धार्मिक मान्यता का पुं भी है, वह धर्म-गाथा कहलाता है। इसके अतिरिक्त प्राचीन मौखिक परम्परा से प्राप्त कथा तथा गीत-साहित्य भी लोक-साहित्य कहलाता है।<sup>२</sup>

१ महाराष्ट्र सारस्वत (भाग दो) पृष्ठ २०६

२ अत्र लोक-साहित्य का अन्वयन, पृष्ठ २-६

## लोक-साहित्य-सकलन की परम्परा

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी देशों में लोक-साहित्य-सम्बन्धी तीव्र आकर्षण उत्पन्न हुआ। जॉन ऑब्रे (John Aubrey) द्वारा लिखी गई टिप्पणियों से ज्ञात होता है कि इस घोर सत्रहवीं शताब्दी में ही विश्वास के मध्य प्रगट हो गए थे।<sup>१</sup> नृत्य-शास्त्र, समाज विज्ञान, जाति विज्ञान एवं मध्य विषयक कबील ज्ञान की प्रगति ने लोक-भाषाओं की मौखिक विधि के प्रति सभी देशों को समान रूप से आकर्षित किया। क्रमशः लोक में प्रचलित मान्यताएँ, रुढ़ियों, अंध-विश्वास, परम्पराएँ, धार्मिक आचार विचार और विभिन्न भाषागत अभिव्यक्तियाँ भी सम्पन्न के नियम बनते गए जो समान रूप से लोक-कथा-साहित्य के अन्तर्भूत हो सकते हैं।

पियरे पॅरी (Pérey) द्वारा प्रकटीत गए इस विषय की खोज (१९वीं शताब्दी) ग्रिम द्वारा किम्बल् वैज्ञानिक रूप प्राप्त करते हुए, बॉन्स और मेक्समूलर के वैदिक साहित्य के सम्पन्न का सर्वांगीण पाठ, टेकर के व्यक्तियों के रूप में अस्तित्व हुए और फुचर के 'दी गोल्डन बो' (१८८० ई०) ग्रन्थ के रूप में अन्तर्भूत रह गई। संक्षेप में लोक-साहित्य का सम्पन्न परिचय में विभिन्न जातियों के प्रति विश्वास-वृत्ति से प्रेरित होता

१. ऑब्रे के सन् १६८० ई० में 'रिमेम्स ऑफ़ क्विन्टिज़िस्मे प्यर डे गुडहार्म' पर अपने विचार लिखे, जो सन् १८८१ में प्रकाशित हुए।

कुछा बीरे धीरे एक अलग विभाग का स्वरूप प्राप्त किया गया, किन्तु न केवल परिषदी देशों को ही प्रभावित किया, बल्कि वहाँ से ठीकी हुई तरह ने सुदूर-पूर्वी देशों को भी शीघ्र ही प्रभावित करना आरम्भ कर दिया।

भारतवर्ष में इस धर्म की सहर लोक-बताओं के सम्प्रदायों को दूरे हुए प्रभावित नहीं आर। १३वीं शताब्दी के मध्य में जब अफ़्ग़ानि-शासकीय बाग़दोर पूरी तरह अपने हाथ में सँभाली, तब लोक-मानव धर्मकन की आक्रमणवाच्य अफ़्ग़ानि विद्वानों ने अपनी दृष्टि डीढ़ार।। पीछी, बंगाली भाषियों विशिष्ट प्रयागों और भिन्न भिन्न संस्कृतियों का देश उन्हें कम आरपयबबक नहीं लगा। पृथक्स्वरूप भारतीय लोक-साहित्य के अध्ययन और संकलन की नींव पनी।

[१] बी तो कर्लस बेन्त टाड के 'एकस एरद परिटमिन्स्ट्रीय ऑफ एन्सपल' (१८१३ इ०) से भारतवर्ष में लोक-बता-संकलन का अध्याय मालना चाहिए, किन्तु उसमें बला-तय की अनेका इतिहास की सामग्री का समुच्चय है, अतः सी "गोवर्नर (Gover) की पुस्तक 'फ़ोक सांग्र ऑफ़ सर्व इण्डिया' (सन् १८६२) को प्राथमिकता दी जाना अनुचित न होगा, जो कि कबानिर् माण्ड में लोक-गीतों का प्रथम संग्रह है। मुबिया के लिए इस दिशा में माण्ड-सम्बन्धी प्रकाशित ग्रन्थों को दो

ग्रन्थों में बाँटना ठवित होगा—

(अ) हिन्दी बनपद-सम्बन्धी ग्रन्थ और (आ) आदिनी बनपद सम्बन्धी ग्रन्थ।

(अ) हिन्दी बनपद-सम्बन्धी ग्रन्थ संख्या में बहुत ही कम हैं। इसके अन्तर्गत मध्य-भारतीय भाषियों के सम्बन्ध में मिलते गए दिल्ली के लेख (१८६३), जिनमें कुछ मूल लोक-कथारों भी आर हैं, बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। दिल्ली के परबाल डॉ० बेरियर एम्बुकि के ग्रन्थ—'फ़ोक टेक आक मराठोराल', 'फ़ोक सांग्र ऑफ़ इनीसगाइ', 'फ़ोक सांग्र ऑफ़ मारण्डल दिल' (श्यामपत्र दिवासे सहित), 'सांग्र आक दि अरेस' (दिवासे सहित), 'मिन्स ऑफ़ मिहिल इण्डिया', 'मुबिया एरद देवर पोइल',

'दी बेंगा', 'दी अगारिवा', आदि शरत्चन्द्र राय लिखित 'भुय्या एय्य डेअर क्यूरी' ( १९१२ ), फ्रिचयन बोन द्वारा संग्रहीत 'बिहार प्रोबन्' तथा आयर लिखित 'शू प्रब' कुछ उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं ।

(आ) अहिन्दी सबपद-सम्बन्धी ग्रन्थों में 'ओल्ड डेक्शन डेब'<sup>१</sup> ( १८६८ ), 'डिक्शनिश एयनासाबी आफ बेंगास'<sup>२</sup> ( १८७१ ), 'फ्लेक सॉन्ग ऑफ बेंगास'<sup>३</sup> ( १८८१ ), 'एन्सट बैलेड्स एबड लीबेड्स ऑफ हिन्दुस्थान'<sup>४</sup> ( १८८२ ), 'लीबेड्स ऑफ दी पंचाल'<sup>५</sup> ( १८८४ ), 'बाइड अकेक स्टेपीच'<sup>६</sup> ( १८८५ ), 'फ्लेक लोर इन सदर्न इण्डिया'<sup>७</sup>, 'इण्डियन फोफ्लोर'<sup>८</sup>, 'मिगला किलेब टेक्स'<sup>९</sup>, 'रोमाण्टिक टेक्स फॉम पंचाल'<sup>१०</sup>, 'बंगाली हाउल होल्ड टेक्स'<sup>११</sup>, 'ओरियन्टल पव्ल'<sup>१२</sup>, 'इण्डियन केण्डस'<sup>१३</sup>, 'फ्लेकलोर आफ दी तेरापूच'<sup>१४</sup>, 'इस्ट बेंगाल

- 
- १ मिस फेपर
  - २ बाल्यन
  - ३ आसबिहारी दे
  - ४ तोरुच
  - ५ थार० सी डेम्पस
  - ६ भीमठी स्वीड
  - ७ नटेश शास्त्री
  - ८ आर०सी० सुकर्जी
  - ९ भीमठी डेकन
  - १० सी० स्वीट्जर्न
  - ११ एम० कुञ्जक
  - १२ शोममादेवी
  - १३ रामस्वामी राय
  - १४ सी० आर० सुमाशिव पठाण

बैकोइल<sup>१</sup>, 'बोकोइल ऑफ बाम्बे'<sup>२</sup>, 'बोकोइल नोट्स, इण्डिया एण्ड बम्बे ऑफ बाम्बे'<sup>३</sup>, आदि कुछ ग्रन्थ ग्रन्थ हैं। अनुमान है कि कुछ ग्रन्थ बोल होने पाहिँये जो इन दिनी भारतीय पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हैं।

इन ग्रन्थों के प्रतिरिक्त 'बाल्कन ऑफ पयल एशियाटिक सोसायटी', 'इन्डियन ऐंटीक्येरी', 'नार्थ इन्डिया नोट्स एण्ड क्वेरीज', 'विशाल उद्गीत रिचर्स सोसायटी बंगल', आदि में कृषि डेमेन्ट क्लब, वे एन्-मॉलीज, रोम्यस, बोर्डिंग, स्लूनसिज, टाट्पमूपन, पैरर, ब्रिस्लन, चाये-बनाब, हॉपमैज, माउन, आदि के कुम्हार सेवों में बहुत कुछ काम की सम्पत्ती प्रकाशित हुई है। भारतीय भाषाओं का अध्ययन भी इस निहा में सहयोगी सिद्ध हुआ है। 'मिन्डिस्टिक सर्वे ऑफ इन्डिया' (१९०७ ए) की रिपोर्टों में मिर्कसन ने कुछ मूल गीतों को अनुबाण सहित प्रस्तुत किया है।<sup>४</sup>

उपयुक्त ग्रन्थों की तुली से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी बचपनी की अवेदा अहिन्दी बचपनी में, भारतीयों और अमान्यतों का अन्तिक कार्य हुआ है। हिन्दी बचपद तो हिस्लार, एशियन और कार्पर के ही गते भाष। वृत्ते, लोक-कथाओं की ओर अन्व विपरी से आबिक लय दिया गया, जिससे लोक-साहित्य की अन्व दिशाएँ हुई मर का उधी हैं। अन्तर्भाषियों द्वारा लोक-साहित्य-सम्बन्धी कार्य अग्रतवध रूप से मले ही वैश्विक रहा हो, पर प्रत्यक्ष नहीं है कि उनमें लोक-वीर्य के वैश्विक की विद्यता थी। ईसाई मिशनरियों के चेतना और अन्-अन्वय भारतीय भाषाओं के अध्ययन की साम्प्रदाय ने भारतीय भाषाओं के मौलिक साहित्य के संरक्षण की भी प्रस्ता टी, इसमें शक नहीं।

२०वीं शताब्दी के आरम्भ में राष्ट्रीय चेतना और भावनायुक्त वाचस्पत्य

१ दिपेक्षचन्द्र चन्द्रकुमार ( अन्वकता विरचिकावध )

२ २ आर० इ० अन्वदिक

३ रेगिड 'बोकोइल' ( बचपनी, १९१९ ) में प्रकाशित 'भारतीय लोक-कथाएँ और उनके अन्विकी संघ' हीर्षिक संघ

आरम्भ हो गई थी। उसने आत्ममापियों के प्रपत्नों से प्रेरणा लेकर लोक-साहित्य के प्रति रचि-निर्माण में योग देना आरम्भ किया। इस प्रस्था और रचि के पृष्ठ में पत्नीय आन्दोलन और इने गिने साहित्यिकों में निहित जनोन्मुखी स्नेह का बल भी था। कुछ अंशों में लोकमाला की उखा और भोली 'त्रिपा' अभिम्पितियों का आरुपण्य भी अमर कर रहा था।

२ हिन्दी में कृषि लोक-साहित्य पर प्रभय डालने के पूर्व, अन्य प्रान्तीय मायाओं में लिखे गए कालों पर एक बकर डालना आवश्यक है, किन्तु गुजराती, बंगला, मराठी, पंजाबी विशेष रूप से अग्रणीय रही हैं।

गुजराती में मन्वेरवन् मेघानी द्वारा सम्पादित 'रक्षितली रत्न' (१ भाग), 'धुन्डी' (२ भाग) तथा 'लोक-साहित्य', रक्षितलीय मेहता लिखित 'लोकगीत' और नर्मदाशंकर लालशंकर द्वारा संमहीत 'नागर स्त्रियों गाथा गीत' उल्लेखनीय हैं। बंगला में 'लुकूमयोर कृष्ण' (योगीन्द्र नाथ सरकार), 'बंगला रत्न १६१६ (बकरीन्द्र नाथ टाकुर), 'बापमन्वी' (महम्मद मन्सूरहीन) और 'बंगला वाक्य' (बालीमुहीन), पंजाबी में 'पंजाब के गीत' (पं. रामशरणदास), 'गिद्धा' १६१६ (विश्व सत्यापी)-मराठी में 'स्त्री जीवन' (सात गुडबी), 'साहित्याचें मूलकन' (वामन चोरवडे), 'अपौरुषेय बाह्मन (अमलानार रेणपांड), 'परहाड़ी लोक गीतें' (गोरे), 'लोकगीतें व लोककथा' (बोरी), 'लोक साहित्याचें लेखें' (मासवी टामडेकर) तथा अ. न. केशकर द्वारा संमहीत 'ऐतिहासिक पोवाडे' एवं क. सुगंभागाव, डॉ० सतोबिनी वाकर आदि के कुछकर लेख उल्लेखनीय हैं। नेवन्दी गंगावरम ने जगम्मा ५००० ठेकगु लोकगीत संकलित किये हैं। के. व्ही. बगन्नायन् न तमिल लोककथाओं के दो संग्रह, गोपाल विश्वने ने मलयालम लोकगीत तथा 'मालिगे इयड' अपने लिखित प्रथम इस दिशा में उपहनीय सामग्री हैं।

लोक-साहित्य संकलन के सम्बन्ध में जो परिस्थितियाँ अन्य प्रान्तीय

१ 'देविण', 'आलोचना' अंक ४; 'हिन्दी-साहित्य के विकास क्रम में लोकवादी की पृष्ठभूमि' शीपक डा. सत्यरथ का खेत पृष्ठ १६



मायाजी के समझ थीं वे ही हिन्दी के सामने रहीं। २०वीं शताब्दी के वृद्धे बराह में 'सरस्वती' मासिक से प्रोत्साहन पाकर श्री मन्मथ द्विवेदी के प्रयत्नों से 'सरस्वती' नामक गोरखपुर बिले के गीतों का एक छोटा सा संग्रह सन् १९११ में प्रकाशित हुआ।

हिन्दी में लोक-साहित्य-संकलन के उद्योग का यहीं से प्रथमोत्थापन आरम्भ होता है।<sup>१</sup> ठन्ही दिनों 'सरस्वती' में सन्तप्पम बी० ए० के 'पंचाशी लोकगीत' प्रकाशित हुए थे, (बिनाम संशुद्धित संस्करण १९२५ में 'पंचाशी गीत' के नाम से प्रकाशित हुआ) बिल्ले पं० रामनरेश त्रिपाठी निरूपण ही प्रमात्रित हुए बिना न रहे। सन् १९२६ के पत्रपत्र के बड़ी शक्ति से इस क्षेत्र में पुस पड़े। परिष्कारस्वरूप 'कविता-कौमुदी' (पौंचास भाग), 'हमाय भाग-साहित्य' तथा 'भारवाड़ी गीत-संग्रह' पुस्तकों का विमोचन हुआ। 'कविता-कौमुदी' की भूमिका में ग्राम-गीत-संग्रह के कार्य में जाने वाले कहीं का, उल्लेख त्रिपाठीजी ने एकदम टंग से किया है। अगला कार्य आरम्भ करने के पूर्व 'सरस्वती' में कुछ गीतों को लेकर उद्येने दो लेख लिखे थे। 'बौद्ध' मासिक का भी उस समय कम सहयोग न रहा। त्रिपाठीजी की शक्ति और तत्परता का अनुमान उनके एक पत्र-पत्र से कीजिए—

मैं विरही हूँ गीत का घर सबूँ का मेस।

याजी वाले गीत की घूम रहा हूँ पैस।

धम्म बरत्र देता नहीं नहीं विमल की चार।

मुझे साहित्य गीत वह जिसमें हो कुछ चार ॥<sup>२</sup>

१ कथना जाता है कि बाँकीपुर त्रिपाठी छात्रा टंगबहादुर भावक के सन् १८८९ में 'सुका बूँडा' नामक गीतों का कोर संग्रह तैयार किया था जो खेसक क देखने में बड़ी थाया। यदि उक्त संग्रह उपलब्ध हो याव तो वह निरूपणपूर्वक कहा जा सकता है कि चाँदेजी के कार्यों का ममात्पतर हिन्दी में भी लोक-साहित्य-संकलन का कार्य आरम्भ हो गया था।

२ 'कविता कौमुदी' (५वां भाग) की भूमिका, पृष्ठ ३३

त्रिपाठीजी की मौलि १६३० के परवाण भी देवेन्द्र सत्याधी भी नीतों की खोज में हुए गए। त्रिपाठीजी का क्षेत्र संकुचित और तबिक वैयक्तिक रहा, पर सत्याधीजी का विस्तृत, विस्तृतपणा हुआ और गहन प्रमाण। उन्होंने भारतीय प्रमों में दूर-दूर तक यात्रा की, गीतों का संकलन किया वहीं गीतों पर 'मादर्न रिथ्यू' 'रूल्स इविड्या' और हिन्दी-उर्दू के पत्रों में काम से लिखते रहे। सत्याधीजी के अंतर परिमम और प्रश्रयन का कुछ ऐसा प्रभाव रहा कि १ अक्टूबर, १६४० में लोकक से वातांताप करते हुए गांधीजी ने कहा था—“पचास से अधिक भाषाओं के कोर्से तीन साल गीत संग्रह कर डालना कोर्से छोटा काम नहीं है। तुम्हारे बीच वर्ष इसी काम में लगे हो गए।”<sup>१</sup> गांधीजी के इस कथन से यही संकेत मिलता है कि भी सत्याधी सन् १६२७ से ही गीतों को कुटने में व्यस्त हो गए थे और प्रतिदिन औसतन ४२ ४२ गीत एकत्र करते रहे।

लोक-साहित्य-संकलन के प्रयोजन की अवधि सन् १६४२ तक समझनी चाहिए। इस बीच पत्र-पत्रिकाओं में रसीले-मटकेले लोकगीतों की, भंगारी और किरही भाषणाओं के प्रति, 'आह' और 'बाह' की प्रतिक्रिया से बोधिलक्ष्मी का प्रकाशन होता रहा। राजस्थान और मारवाड़ अक्षय ही इस आन्दोलन के प्रति जागरूक हो गए थे। सर्वप्रथम पारिक के प्रमों से राजस्थानी गीतों का संकलन एक सुलामी हुए पद्धति से आरम्भ हो गया था। तो भी प्रमुख रूप से प्रथमात्मान यमनरेश त्रिपाठी की 'कविता कौमुदी' और देवेन्द्र सत्याधी के रामानो लेखों से प्रभावित होकर, केवल लोक-गीतों के संकलन तक ही सीमित रहा।

सन् १६४२ के परवाण, दिवसी में अपने इस 'मूलभूत' के प्रति एक नए जागरूकता उत्पन्न हुए, बिलके पीछे पं बनारसीनाथ पत्रवेदी की 'विदेशीकरण योजना', तथा डॉ. रामनरेश्वरयण अमरनाथ की 'अक्षय कल्याणी योजना' प्रख्यातापी सिद्ध हो रही थी। उद्भूत साहित्यिक लिखित

१ देवेन्द्र सत्याधी 'भरती गांधी है' आमुस—पृष्ठ ३

मातृमयाधों का प्रश्न' लेख' तथा शिवदानसिंह चौहान की प्राचीन मायाधों पर निबन्ध-रूप में लिखी गई रिपोर्ट<sup>१</sup>, अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बावजूद प्रभावशाली ब रहे। इस वैज्ञानिक कक्षापोह का परिणाम यह हुआ कि कुछ विद्वान् लोक-वार्ता-साहित्य के संकलन के विषय में सोचने लगे, कि किस प्रकार काम किया जान। कुछ नये भी प्रश्न उपस्थित किये कि लोक-साहित्य अथवा लोकवाक्ता-साहित्य के संकलन से क्या होया, क्या साहित्य को उसके किस प्रकार के काम की सम्भावना है। किन्हीं अंशों में प्रथम प्रश्न की सम्झना प्रायः मी बनी हुई है, जिसका स्पष्टीकरण हिन्दी-लेखकों की आर से नहीं हुआ है। काम करने का प्रश्न जो साधनों के अभाव में आगे भी बना रह सकता है। श्री रघुलाल सांकृत्यायन ने १९३७ में लोक-साहित्य-संकलन के लिए देव पुन जाने के विषय में साधारण तौर पर योजना प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

(१) माया ऐसी हो, जिसका धन अपेक्षाकृत छोटा हो।

(२) जिस माया के (कई स्थानियों के अन्तर से) अनेक रूप उपलब्ध हों, जिससे कि तुलनात्मक अध्ययन में पूरी मदद मिल सके।

(३) जहाँ माया-सम्पत्त तथा उस माया के मर्मज्ञ भी मिल सकें।

(४) जहाँ की स्थानीय संस्थाएँ इसके लिए तैयार हों।

(५) जहाँ उन्माही लेखक और कार्यकर्ता मुलम हों।

(६) जहाँ काम बजटी समाप्त किया जा सकता हो।<sup>२</sup>

दूसरे अर्थान में लोक-संस्कृति के अध्ययन और लोक-साहित्य के संकलन के उद्देश्य को लेकर कुछ जनपदीय संस्थाओं का तेजी से निमाय हुआ। इस में 'ब्रजसाहित्यमंडल', गढ़वाल में 'गढ़वाली साहित्य-परिषद्', जयपुर में 'रघुनाथ साहित्य-परिषद्', बुन्देलखण्ड में 'लाल-बहा साहित्य-परिषद्' भोजपुर में 'भोजपुरी लोक-साहित्य-परिषद्', राजस्थान में

१ 'हंस', सितम्बर १९३९

२ इतिवत्, शिवदानसिंह चौहान की पुस्तक 'प्रगतिवाद'

३ पराशर निबन्धावली—'हिन्दी की स्थानीय भाषा

‘भारतीय लोक-कथा-संग्रह’ तथा मालवा में ‘मालवा लोक-साहित्य-परिषद्’ आदि कुछ इसी प्रकार की संस्थाएँ हैं। द्वितीय उत्थान का काल अभी समाप्त नहीं रहा था सकता। अठार प्रथमोत्थान की अपेक्षा अनेक बहुमुखी प्रयत्नों की दृष्टि से द्वितीय उत्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है। सुविधा के लिए उक्त काल के प्रयत्नों पर निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकाश डाला जा सकता है—

(क) लोकगीतों का संकलन (ख) शास्त्रीय अद्वैतवादीयुक्त लोक-गीतों के संग्रह, (ग) माधवरायण टंग से लोकगीतों पर लिखे लेखों के संग्रह

(ल) लोक-कथाओं का संकलन

(ग) लोकशक्तिपूर्ण एवं कदाक्यों के संग्रह

(घ) आलोचना-प्रधान लोक-कथा-सम्बन्धी प्रबन्ध अथवा ग्रन्थ

(ङ) लोक-कथा-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ और

(च) फुल्लर प्रयत्न।

(क)(ख) हिन्दी प्रदेश की वर्तमान बोलियों में द्वितीयोत्थान के अग्र शतक में, प्रमुख रूप से मारवाड़ी, राजस्थानी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, मिमाड़ी, मैथिली, कुर्बेसालरवाड़ी, मालवी आदि बोलियों के अनेक गीत-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनसे निम्न बोलियों के भी कुछ गीत-संग्रह हो चुके हैं, किन्तु प्रकाशकों के अभाव में उनका प्रकाशन नहीं हो पा रहा है। प्रकाशित संग्रहों की तालिका इस प्रकार होगी—

मारवाड़ी : १ ‘मारवाड़ी गीत-संग्रह’ (लेखायम माली), २ ‘मारवाड़ी गीतमाला’ (मन्मथलाल बैरव), ३ ‘मारवाड़ी गीत’ (निहाल-चन्द बर्मो), ४ ‘मारवाड़ी स्त्री-गीत-संग्रह’ (वायलन्ड बोम्बे), ५ ‘मारवाड़ के ग्राम-गीत’ (बगदीरमिह नेहरोल)।

राजस्थानी : १ ‘राजस्थान का कूहा’ (स० नरोत्तम स्वामी), २ ‘राजस्थान के लोक-गीत’ (सुषम्भराय पाटील, दादुर रामसिंह), ३ ‘राजस्थान के ग्रामगीत’ (नरोत्तम स्वामी)।

मोक्षपुरी : १ 'मोक्षपुरी ग्राम-गीत (हृष्यदेव उपाध्याय), २ 'मोक्षपुरी लोकगीतों में कल्प-रस' (दुर्गाशंकर प्रसादसिंह), ३ 'मोक्षपुरी ग्राम-गीत' (आर्चर) ।

झुपीसगढ़ी : 'झुपीसगढ़ी लोक-गीत' (श्यामचरण शुभे) ।

निमाड़ी : 'निमाड़ी ग्राम-गीत' (रामनाथस्य उपाध्याय) ।

मैथिली : 'मैथिली लोकगीत' (रामशंकरासिंह 'उज्जेश') ।

बुन्देलखंडी : 'इसुपी की फागो' (स कृष्णानन्द शुभ) ।

मालवी : 'मालवी लोक-गीत' (श्याम परमार) ।

झौरवी : 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत' (उद्भुत लोकसाहित्य) ।

उक्त संग्रहों में प्रामाणिक गीतों के अतिरिक्त, भूमिकाओं में सम्पादकों द्वारा लिखे गए लोकगीत-सम्बन्धी विवेचन पठनीय साहित्य है। 'मोक्षपुरी ग्राम-गीत' की भूमिका की बहुरेव उपाध्याय ने लगभग २५ पृष्ठों में लिखी है, जिसमें गीतों के परिचय, मात्सीय और पारम्पर्य परम्पराएँ, गाने के ढंग, प्रकाश, मौखिक ब्राह्मण आदि पर प्रकाश डालते हुए अन्त में मोक्षपुरी व्याकरण तक की रूप-रेखा दी है। इस प्रकार 'उज्जेश' भी अपने संग्रह की भूमिका में लोकगीत की तरह तक पहुँचे हैं। 'राजस्थानी लोकगीत' वर्यपि छोटा संग्रह है, पर सर्वप्रथम पाठीक ने १२ पृष्ठों में राजस्थानी गीतों का विवेचन-विरलेप्य अत्यन्त ही वैज्ञानिक पद्धति से किया है। गीतों की तुलनात्मक विवर्णियाँ और उपमाओं की वासिका, उनके गीतों में गहरी पैठ के चोख हैं। 'इसुपी की फागो' बुन्देलखण्ड के एक लोक-कवि की प्रकाशित फागों का संग्रह है। कृष्णानन्द शुभ द्वारा लोक-कवि के जीवन और रचनाओं पर प्रकाश डालने वाली यह हिन्दी-लोकगीत-साहित्य में प्रथम पुस्तक है। उक्त संग्रहों के प्रति समग्र रूप से यही कहा उचित होगा कि उनमें यथाप लोकता का वैज्ञानिक स्वरूप

१ 'उज्जेश' की ३ संग्रह में कुछ मोक्षपुरी गीतों को अविच्छिन्न रूप देने की चेष्टा की है, जिससे गीतों के मूल रूप नष्ट हो गए हैं। अतएव वैज्ञानिक दृष्टि से यह प्रकाश उचित नहीं कहा जा सकता।

पूरी तरह निरस्त नहीं, तथापि उनके द्वारा माओ कम्युनिज्म की नींव डालने के लिए तैयार हो गई है।

(आ) माकनात्मक ढंग से लिखे गए लोकगीत-सम्बन्धी लेख-संग्रहों के अन्तर्गत केवल केन्द्र सत्यापी शिक्षित १ 'घरती गाती है' (१९४८), २ 'धीरे बहो गंगा' (१९४८), ३ 'बेला फूले आधी रात' (१९४९) और ४ 'बाबल आये दोल' (१९५२) पुस्तकें आती हैं। इस दिशा में सत्यापी अकेले हैं। वे तो उन्हें हमने प्रथमोत्थान का व्यक्तित्व माना है, पर पूर्व संघित उनकी लोक-साहित्य-सम्बन्धी सामग्री का प्रकाशन द्वितीयोत्थान काल में हुआ है। अतः मस्तिष्क में किसी गीत की ध्वनि की मूर्ति उनका प्रभाव बना हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि अपनी भाषा और शैली से सत्यापीजी ने हिन्दी के एक बड़े वर्ग को लोकगीतों के प्रति आकर्षित किया है। गीतों के प्रति माकना-प्रधान पंहुँच होते हुए, तुलनात्मक इतिशेष का संकेत तथा लोकवाता सम्बन्धी प्रकाशित सामग्री का यथोचित शान, और फिर उसके अन्तर्माक्षिप्त सम्बन्ध का उत्कृष्ट स्वरूप हमें उनके लेखों में मिलता है। निरूपण ही उनके संग्रहों में मूल गीतों की सफाया कम है। तथापि गीतों के लिए उन्होंने अनेक प्राप्ति में प्रयत्न किया है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि होने के नाते उन्होंने अपने लिए केवल गीतों की मधुर पंक्तिों ही चुनी हैं, अपनी शैली को उन्होंने स्वतन्त्र 'निजी पर्चा की शैली' कहा है। इसलिए वह वाभाव्य पाठकों को उत्कृष्ट नृ लगी है। सत्यापीजी का एक महत्त्वपूर्ण कार्य गीतों के अनुवाद-सम्बन्धी शैली के विषय में है। उन्होंने स्वोक्ति किया है—“अनुवाद भी एक कला है। सफ़ा सुनकर वह बड़ी विमोचनीय का काम है। न एक शब्द च्युटा, न एक शब्द कम; पंक्तिवार अनुवाद; बही है अस्तर्पणीय लोक-गीत विशेषकों की शैली।”

“बहों भी मैं गया, मैंने किसी-न किसी रोमांचित की सहायता से गीतों का अनुवाद साय-साय तैयार करने का काम धारी रखा—प्रत्येक शब्द का

अनुवाद, प्रत्येक बड़ी का अनुवाद अनुवाद करते-करते मैं इसी प्रकार मैं कमरा अधिक-से अधिक लच्छत होता जाता गया।”

उत्सार्थीजी अपने कुछ लेखों में लोकगीत-संग्रह के अनुभव भी व्यक्त करते गए हैं, जिससे गीतों के उल्लेख के अतिरिक्त उनमें कहानी-रस का आभास भी मिलता जाता है।

(ख) लोक-कथाओं के संकलन का प्रयास हिन्दी में गीत-संकलन की अपेक्षा बहुत ही कम हुआ है। डॉ. बेरिगर एलबिन ने अपने ग्रन्थ ‘फोर्गट्टेन ऑफ महाराष्ट्र’ की मुद्रिका में प्रसिद्ध नृणाश्रमिता मार्गण शठन का अनुमान व्यक्त किया है कि भारत तथा उसके पड़ोसी देशों में लगभग ३००० लोक-कथाएँ लिपिबद्ध होकर प्रचलित हो चुकी हैं, जिनमें पंजाब संघस परगना और मध्यप्रदेश से लगभग ६० कथाएँ प्राप्त की गई हैं। डॉ० एलबिन ने अपने संग्रह ‘फोर्गट्टेन ऑफ महाराष्ट्र’ में १५० तथा ग्रन्थ रचनाओं में ५५ कथाएँ संकलित की हैं। ब्लूम फील्ड का तो कहना है कि भारतीय लोक-कथाओं में संस्कृत-साहित्य की ही गाथाएँ ध्वजित होती हैं। उन्होंने अपने बड़कर कहा है, “जिसे हम भारतीय कथा-साहित्य कहते हैं, वह वास्तव में पश्चिमादि कथा-साहित्य—सिन्धु, मंगोली सुदूर प्राचीन, चीनी साहित्य—ही है।” अंग्रेजी विद्वानी द्वारा लोक-कथाओं पर जो कार्य हुआ है, वह कुछ अधिक होकर भी प्रामाणिक नम है। इसके कारण अनेक हैं। मुख्य कारण तो उनके इतिहास का ही है जो मनोच्छन्न और रोमांच तक सीमित रहा।

वास्तव में यह दिशा ऊर्दी लोगों के लिए अधिक मुल्य दे जो अपनी धीमाओं की बोलियों और बर्तों के व्यक्तियों की आत्मा से परिचित हो। इस दि से हिन्दी में उनके हमानदार प्रयास पर शिष्यदाय अनुबेदी का है। उन्होंने बुनेलपुर की लोक-कथाओं का संग्रह तैयार किया, जिनमें स्थान और बातावरण के साथ लोक-कथाओं की ‘स्वयं’ वह न जान दी। इसी प्रकार राजस्थानी और मसरी लोक-कथाओं के संग्रह उल्लेखनीय हैं।

सामान्यतः हिन्दी की बोलियों में अंग्रेजी हिन्दी के माध्यम से काम होता

राज है। वैज्ञानिक अनुसंधान की अन्धा सहित वैदिक संस्कृत, अपभ्रंश, पाली, आसामी, सिन्धी, चीनी आदि में कैसे हुए लोक-कथाओं के सूत्रों की खोजना उतना ही महत्वपूर्ण है जो बिना मूल कथाओं के (सर्व वृत्त स्वीकृत रहित) लिखित किये जान से पूर्ण नहीं हो सकती।

कथाओं की भेरी में गीत-कथाएँ भी आती हैं जिनका संरक्षण साधारणतया नहीं के बराबर है। अतः सम्बन्धित व्यक्तियों की लगन से इस दिशा में काम अब तक न होगा तब तक आगतभाषी संघर्षों से उत्पन्न प्रान्तीयों बच नहीं होने की।

(ग) लोककथियों के वैज्ञानिक अध्ययन की नींव हिन्दी में पिटने वाली, यह विशादत्त प्रश्न है। फिर भी कन्देयालाल सहल के सेवकों में तथा इन्द्रा वैज्ञानिक इतिहास मित्रता है। लोककथियों के अन्तर्गत मुहावरे अनुभव प्राप्त सांकेतिक शब्द-संज्ञान और परेशियाँ आती हैं। हिन्दी-भाषियों के लिए जो मुहावरे-शब्द उपलब्ध हैं, उसमें प्रान्तीय बोलियों की अनेक लोककथियों का समावेश हुआ है। फेरन की 'द्विचरणी ऑफ हिन्दुस्तानी प्राक्म' में भी कुछ विहायी और मोबपुरी लोककथियों के अतिरिक्त अन्य बोलियों की लोककथियाँ भी स्थान दिया गया है। यह ता हिन्दी के अतिरिक्त मुहावरे लोककथियों प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों की सम्पत्ति हैं, पर उन्हें मूल रूप में संरक्षित करना अनेक कठोरों से आवश्यक है। संस्कृत, पाली, अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओं में प्राथमिक लोककथियों के अनेक प्राथमिक स्वरूप विद्यमान हैं। यह आवश्यक है कि वहाँ लोककथियों के मूल की खोज की जाय, वहाँ प्राक्म से अब तक के उनके मूल मूल रूपों का पता लगाकर उनका मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन किया जाय।

हिन्दी में अन्तर्गत लोककथियों की प्रकाशित पुस्तकें केवल पाँच ही हैं—१ 'मेवा' की कथाएँ, १ला भाग (सकलिलाल घोषी), २ 'मालवी कथाएँ' (जबलाल मेहता), ३ 'उज्जयिनी मीलों की कथाएँ, १ला भाग (मैत्रीया), ४ 'उज्जयिनी कथाएँ (कन्देयालाल सहल), और ५. 'उज्जयिनी कथाएँ' (कलकता, २००६)।



अंग्रेजों ने भी इस ओर ध्यान दिया था। श्री देबेन्द्र सत्यार्थी ने 'शिक्षा फूले आधी रात' में पंचाशी मुहावरों पर एक अध्याय लिखकर दिया है। परे कियों के संकलन का प्रयास सन्तोषजनक नहीं है। रामनरोध त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी (५५० म्या)' में उत्तर प्रदेश की कुछ परहेलियों ही हैं। कर्पा, आँधी, पानी, क्वी आदि के सम्बन्ध में घाप और महुपी तथा अन्य कव कवियों द्वारा प्रचलित की गई लोककवियों का एक नया संग्रह त्रिपाठीजी ने हाहा ही में तैयार किया है। पं० गबोयडत 'इन्द्र ने पीस, आयात, भाव्य, भाग्य तथा महीं आदि सम्बन्धी एक लोक-माहा सन् १६४१ में 'बयाबी प्रयाप', आसियर में लिखी थी, जिसमें लोककवियों का एक खासा उभावेष हो गया है। 'मासवी लोककवियों' एक नया संग्रह पं० सूर्यबाप-यश व्यास के सम्पादन में छप रहा है।

लोककवियों और मुहावरों का संकलन से गुजरते हैं, उन उनके रूपों में परिवर्तन हो जाता असम्भव नहीं। परिस्थिति की मार से कर कहा वतें जो क्वी कर्म तक सीमित होती हैं, नष्ट हो जाते हैं। परं कवियों के आ जाने से मनुष्य के स्वभाव के साथ कदावती और लोककवियों के उपरस्व बदलने सफते हैं, तभी उनका महत्त्व इतिहास और काल की दृष्टि से बढ़ जाता है।

परहेलियों, जिन्हें संस्कृत में 'ब्रह्मोदय' कहा जाता है, असन्त ही अल्प मात्रा में संकलित की गई, यह स्पष्ट है। डॉ० बैरिफ एसकिन और आर्थर ने सन् १६८१ में 'मेन इन इण्डिया' में एक लेख लिखा था, जिसका महत्त्व इनके मुलाके हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मते हिन्दी में किये गए प्रयत्नों की अपेक्षा आगे कहा हुआ है। डॉ० सत्येन्द्र ने परहेलियों के विश्लेषण पर अपने विचार व्यक्त किए हैं—“माध्यम में तो बैरिफ अस ने 'ब्रह्मोदय' का पलन लिखता है। 'अरबीय मठ' में तो ब्रह्मोदय अनुपलब्ध का ही एक म्या था। अरब की सांस्कृतिक शक्ति से पूर्व, होर और ब्राह्मण

संशोधन पूछते थे। इन्हें पूछने का केवल इन दो स्रोत ही अधिष्ठाता या। इस प्रकार पहिलियों का प्रयोग मार्तण्ड में ही नहीं, अन्य केषों में भी मिलता है।<sup>१</sup>

(घ) लोक-साहित्य-सम्बन्धी वैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यक्त करने वाले (द्वितीय दृष्टक), हिन्दी में केवल डॉ. वासुदेवशरत्त अग्रवाल लिखित 'दृष्टिहीन पुत्र' और डॉ. उत्प्रेन्द्र लिखित 'ब्रह्म लोक-साहित्य का अध्ययन' दो ही ग्रन्थ हैं। यों यहूत सांस्कृत्यात्मक के अतिथय पुत्रकर सेखीं में मार्ग-दर्शन की अधिष्ठाता सम्प्री मिलती है। यह शिशा ऐसी है जिसके प्रति सबसे कम ध्यान दिया गया। इसका मुख्य कारण मूल साहित्य के संकलन का अभाव है। जो काय परिपत्र में प्रिय ने किया, वही हमारे यहाँ डॉ. वासुदेव शरत्त और डॉ. उत्प्रेन्द्र ने किया है, यह मानना आशुक्तिपूर्वक न होगा।

(ङ) जनपदीय साहित्य के अन्वय के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने वाली पत्रिका 'मधुकर' भी कनारसीदास चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में वर्षों से सन्नेष्ट रही। उसमें प्रायः कुन्नेलक्षण के लोक-साहित्य सम्बन्धी सम्प्री छपती रही। 'मधुकर' के माध्यम से टीकमगाड़ के आसपास के ग्रान्तों का बहुत सा लोक-साहित्य संकलित किया जा सक्र। भी चतुर्वेदी अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों और अन्य सेखीं में 'अन्तर्जनपदीय परिपद्' की स्थापना पर बराबर जोर देते रहे, जिससे इस शिशा में वैचारिक स्त्र मिल गया। अन्तर्जनपदीय से 'ब्रह्म मण्डली' का प्रकाशन हुआ। प्रारम्भ में अन्तर्जन ही वह लोकवाता-साहित्य के प्रति उदासीन रही, पर शीघ्र ही वैचारिक अन्तर्जन के प्रभावस्वरूप ब्रह्म के लोक-साहित्य को स्थापन देने लगी। सन् १९४५ में भी छद्मानन्द शुक्ल के सम्पादकत्व में लोकवाता-परिपद्, टीकमगाड़ शाय एक अत्यन्त ही श्रेष्ठ वैचारिक पत्रिका 'लोकवाता' प्रकाशित होने लगी। लः शंखों के बाद पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो गया। किन्तु इस बीच अपने वैज्ञानिक, टोल और सुम्भरिखत प्रयासों के अन्तर्जन पत्रिका अपने ढंग की महत्त्वपूर्ण कस्तु बन गई। इस पत्रिका शाय लोकवाता-

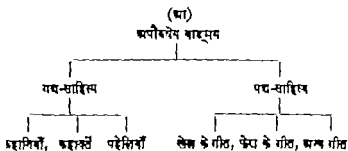
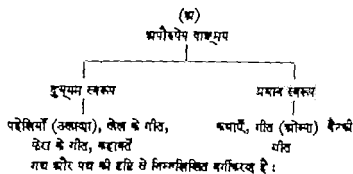
## अपौरुषेय वाङ्मय

‘अपौरुषेय वाङ्मय’ मातृकीय मायाओं में प्राप्त उस साहित्य के लिए स्वयंकी प्रयोग है, जो साधारण मानव-कृत नहीं अपितु वह साहित्य जिसका सृजन देवताओं द्वारा हुआ है। आत्मा के आदि मय इसी के अन्तर्गत आते हैं, किन्तु वहाँ ठरु आराधन की दृष्टि से ‘अपौरुषेय वाङ्मय’ का प्रयोग नहीं किया जा रहा है। कुछ वय पूर्व मराठी साहित्य की प्रीति लेखिका कमला बाई देशपाण्डे ने ‘अपौरुषेय वाङ्मय’ का प्रयोग उस लोक-साहित्य के लिए किया जो पुरुषों द्वारा रचित नहीं, बल्कि उनके सृजन का सम्पूर्ण अथ स्त्रियों को प्राप्त है। ऐसा साहित्य स्त्रियों के जीवन में निरन्तर उपयोगी है और इसके अभाव में सुखों से वंचित होते हुए उनके जीवन का मर्म ही मारी व्यवधान उपस्थित होने की सम्भावना है। इस प्रकार का साहित्य ( विशेष रूप से लोक-साहित्य ) मातृकीय-अमातृकीय सभी मायाओं और बोलियों में विद्यमान है।

स्त्रियों ने अपनी वृत्तियों के अनुक्रम, तद्वत् सृष्टिविधा अनुष्णानिक, औपचारिक एवं मलाच्छाया साहित्य का निमग्न किया है। उन्हें सृजन का ओर निश्चित समझ नहीं। वह परम्परागत ‘श्रुति’ सम्पत्ति है जिसमें प्रत्येक अक्षर में स्त्रियों ने अपनी ओर से कुछ योग दिया है।

समस्त लोक-साहित्य को यदि पुरुष वाङ्मय और स्त्री-वाङ्मय इन दो

स्पृष्ट बगों में विभक्त करें तो निस्संशय ही लो वाङ्मय (अपौरुषेय) का मर्यादा पुन्य-वाङ्मय की अपेक्षा अधिक बढ़ा होया। वह ऐसा साहित्य है जिसे 'अज्ञान' का कथन नहीं है, जो पुस्तकों और प्रश्नों में ल्याही द्वारा स्थिर नहीं किया गया है, जिसके रचयिताओं का किसी को ज्ञान नहीं है और फिर बीकन में जिसके बिना लिखने के विभिन्न आचार विचार और अनुष्ठानों को गति नहीं है। वह लिखने की वासी द्वारा पोषित है। वह उनके हृदय पर प्रेरित गया है। उसे परम्परात्मक संस्कारों का स्पर्श प्राप्त है जिसके द्वारा युगी पूर्व की नायी अपनी वेदना, दर्प, विद्या, अज्ञान, उद्वेग, उत्साह, संयोग, विमोह, प्रतापना, पूषा, स्थानि, आदि से गुम्फित भावों को आन की नायी तक 'वाचिक' अभिव्यक्त शाय पहुँचा रही है। अपौरुषेय वाङ्मय कभी वृत्त की जड़ें भूतकाल में फैली हुई हैं, पर वर्तमान में अविशेष वाङ्मय शाय, पत्र एवं पुष्पों के मीटर एक सामान्य रस का सम्भार हो रहा है। वह भुक्ति-परम्परा के आगम से ही प्राप्त हुआ है। मानव-सम्पदा के विकास के साथ-साथ लिखने का वह साहित्य क्रमशः वृद्धि पाने लगा। यदि हम उसे बर्दों के पुत्र ही आरम्भ किया हुआ वाङ्मय मान लें तो असुक्ति न होगी। यद्यपि आज हमें उस काल के साहित्य का ज्ञान नहीं, किन्तु उपलब्ध होने वाले साहित्य में अत्रिष्ट स्वैर प्रवृत्ति का दिग्दर्शन उन्मत्तनी नायी के मनोवेगों से भिन्न कदापि न होगा। अपने निरन्तर में कला वाङ्मय ने मरुती माया की दृष्टि से इस काल पर विचार किया है। अपौरुषेय वाङ्मय का विषय-विस्तार कहीं तक है इस पर भी उन्मत्तनी नायी की है। सम्प्र स्त्री-साहित्य को उन्मत्तनी दो प्रकार से वर्गीकृत किया है :



उक्त वर्गीकरण एक मात्र विरोध को दृष्टि से किया गया है। समग्र रूप से भारतीय गीतों में अपौरुषेय वाङ्मय का विस्तार काफी बड़ा है। इनमें एक बालक से सम्बन्धित साहर, लोहिली, बन्धा, पल्ला, सल्ला, शेरियाँ, बातके गीत, सावन के गीत मुजने, बन्धारी सम्मति, समदाउरी, मूमर, छत्र के गीत, बेबी-देखाओं के स्तुति-गीत, विवाह-गीत, (जिनके अनेक प्रकार हैं), यचना के गीत श्रुत-गीत, ऋत-अपवाह और लोहाती गीत, पति-पत्नी के प्रेम-सम्बन्धी गीत, परिहारिय, भार बहन के गीत, बालिकाओं के मुइसे, योगो, सबा (मालवा), यदस्या आदि अनेक प्रकार के गीत हैं। गद्य के अन्तर्गत ऋत, लोहात, मनोरंजन आदि से सम्बन्धित गीत (किवाडा) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। भारतीय

धीवर में स्त्रियों की स्थिति चाहे उन्नापन्नक न हो किन्तु ठरु वाङ्मय के क्षेत्र में उनका कुछ प्रभुत्व अक्षर्य नडा-वडा है ।

मध्यम शोक-साहित्य के अध्येताओं को स्त्रियों के लोक-साहित्य का अध्ययन साहित्य की दृष्टि से करते हुए उसे मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक पहलुओं की दृष्टि पर भी करना चाहिए । यों से अन्ततः, साठ नन्द और मौबाह के ठानों से निर्र, पति की अन्नामिनी, के की ल्हेलदार और बुढावे में ठपेड्डा गरी के मिन-मिन रूप ठरी के वाङ्मय में मिलते हैं । मरुटी में लो स्त्रियों के गीतों पर स्तन रूप से विचार किया गया है । 'सावित्री चें गाणे', 'स्त्री गीत-रत्नाकर', 'स्त्री-गीतों' आदि इसी तरह के संग्रह हैं । इनके अतिरिक्त 'अपौरुषेय वाङ्मय अथवा स्त्री गीतों' अम्सा बार्द देशपाण्डे का स्तन आलोचनात्मक निर्र है जिसके आदार पर प्रस्तुत लेख में पचा की जा रही है ।

### काल-निणय की समस्या

अपौरुषेय वाङ्मय का काल-निखन करना सुकर अर्थ है । यदि इस उद्देश से प्रयत्न किया जाय तो निर्रचय ही उपयोगी सामग्री सामने आ सकेगी । स्त्रियों के अविज्ञात गीतों का क्षेत्र पर में है । प्रायः यों के सभी गीत अपौरुषेय हैं, यह स्वाकार कर लिया जाय तो अचिन्त न होगा । काली समय में स्त्रियों मिल-जुकर प्रायः 'गीत बोडनी हैं' । कोर रुक अमली है ता कोर आयामी पंक्तिर्यो । यह अहम लम्बाकाल स्त्रियों की वृत्ति वृत्ति-उत्पत्ता के अाप-काल की अवेडा समूह शान्तिधर में अधिक अनाकूय देखी है । यहाँ संघर्ष और ऐनशिक की-तोड़ परिम्म करना पडता है यहाँ गरी को गीत बोडने का अक्षर ही प्राप्त नहीं होता । गीतों के निम्न में अनुगत वृत्ति का वृत्तिगत प्रयासों की अवेडा अधिक प्रयास है । जैसे कर स्त्रियों मय गीत बोडने में पड होती हैं । उनमें इसकी प्रथम साधारण स्त्रियों की अवेडा अधिक होती है । अमुक गीत अमुक स्त्री का है और अमुक समय में बनाया गया या, आदि बातें अहम ही नहीं बानी

का सकती। मध्यकालीन गीत छोटा-छोटा मिलते भी नहीं हैं, तब हमें उनके भी पूर्व के गीत यहाँ उपलब्ध हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में काल निर्धारण की समस्या एक प्रमुख प्रश्न बनकर रह जाती है। गीतों में वर्णित प्रसंग और संकेतों से सम्मिलित आसन्न काल अन्वय हो जाता है। उदाहरणार्थ मुगलों के आत्याचारों का प्रश्न करने वाला एक गीत प्रस्तुत है :

साठ बहिनि चम्पा सिंघिया के बीरै  
 सिंघिया बिरै पुरे सखीबी के घाट जी ।  
 बाहूँ सखर मुगल के  
 चम्पा परी बन्दिखान जी ८१॥  
 अम रितु भाई गोरी भोगल की  
 चम्पा परी बन्दिखान जी ।  
 कपिया पइसा क डेर जागी है  
 मोहरा न जागी है जाय जी ८२॥  
 चाकि न देउ चम्पा बेरी  
 देरी दोरी हैव हमर जी ।  
 कपिया न खेवै पइसा न खेवै  
 मोहरा न खेवै सख जी ।  
 एक न छोड़ नइ चम्पारानी  
 बहि संग करव बिघाव जी ११३॥  
 हैंसि हैंसि भोगल बोलिया चम्पाई  
 रोई-रोई चम्पा स रहि नहि जाइ जी ।  
 जाइ कुस पर घाटने  
 रायि है पगबी तुम्हार जी ८३॥  
 बोलिया फँदाय भोगल है के गया  
 खैगा घाटने मखान जी ।  
 गर्दु बना है रोविया घोषावा  
 ठपरीं छे गइया है माइ जी ।

जेहू न छे चम्पारानी रामो हई जेवनार जी ॥२॥  
 रोम-राय चम्पारानी से कहै  
 मुब मोगछे मोरी बाय ।  
 हम धन सीम्पी रसोह्यो  
 उम्ह के करहु जेवनार जी ॥३॥  
 हीसि-हीसि मोगछा बकरी मैगल  
 रोह रोह चम्पा से रहि बहि जाय जी ।  
 पिता बारि चम्पा करि गई  
 चम्पा तो होई गई राम जी ॥४॥  
 चम्पा के पिता धन भयछे  
 पूजा से मरिगा भबहार जी ।  
 जरिगै मोगछा कै दाही  
 कहीं होइगा जनाम ती ॥५॥

(बाराबंकी)<sup>१</sup>

पवित्र रामनरेश त्रिपाठी ने ठक गीत का अर्थ इस प्रकार किया है :

“चम्पा अपनी छः बहनों के साथ सटीली के बाट पर लौक (सरकबो) खीर रही थी । इन्होंने मैं मुगलों का लच्छर का पहुँचा और उन्होंने चम्पा को पकड़ लिया ।।।

“इधर बारा ब्रह्म का गह ठहर चम्पा चम्पीखाने में पड़ी है । रुपसी की बेटी लगती है । लाल सुहरें रली हैं । हे मुगल, मेरी बेटी को छोड़ दो ।।।

“न हम अपना लेंगे न पैसा, और न लाल सुहरें । चम्पारानी को हम नहीं दे सकते । इसके साथ ब्याह करेंगे ।।।

“मुगल हँस हँसकर सोझी सेवार बच रहा है और टेढ़े-टेढ़े चम्पा से रहा नहीं जाता है । चम्पा ने कहा है—दादा, अपने पर बाधो, मैं तुम्हारी पगड़ी की लाज रखूंगी ।।।

“मुगल शाली में बैठाकर चम्पा को अपने पर ले गया । गेहूँ और

१ इसका नाम समीक्ष्य : रामनरेश त्रिपाठी शृङ्ख १९७



बने की रोटी बनाकर उसने अर से उस पर गाव का मन्त्र बलवावा और कहा—हे चन्दा रानी, यह बेकार से लो ।५।

“रो-रोकर चन्दारानी ने कहा—हे मुगल, मेरी बल मुख । मैं लाल बनाऊँ और तुम ठठकर लामो ।६।

“हँस-हँसकर मुगल ने हँसना मँगावा । चन्दा से रोते-रोते रदा नहीं जाता । चन्दा चिता बलाकर बल मयी और उल हो गए ।७।

“चन्दा की पिता ऐसी बचकी कि पर-भर में सुखी मर गया । मुगल की दाढ़ी बल गई और वह भी मर गया ।८।”

मिरचन ही उल गीत मुगलों के समय का है या उसके बोड़े बाद का । यह भी सम्भव है कि इसमें काफी रूप परिवर्तन हो गया हो । सन् १८५७ के गदर की पर्यार तो गीतों में लूट मिलती है । कुँवरसिंह का ही मीत लीबिय ।<sup>१</sup> उसने विद्रोही विराहियों का साथ दिया था । कुँवरसिंह न अंग्रेजों से बट लड़ाइयों लड़ी । बगलम की सेवा से ५७ की २ अप्रैल को वह बुरी तरह पावल हुआ । पावल अकबा में ही २१ अप्रैल को उसने अलाल प्रैरद की सेवा से मुक्त किया । प्रैरद मात गया । तीन दिव बाद इसकी भी मृत्यु हो गए । सम्पूर्ण बिहार में कुँवरसिंह के मीत बरू रूपों में प्रचलित हैं । लड़ाइयों के सैकड़ों गीत उपलब्ध हैं । राजस्थान तो ऐसे ऐतिहासिक गीतों का भण्डार है । पहाड़ी जातियों के गीतों में भी स्वाक्षित अक्षिण होने में अल्प-कम का लूट मिल सकता है ।

इसी प्रकार रसगाड़ी, बये बामुदरा, लारी-विपदक प्रसंग, गांधीजी का उल्लेख, न<sup>२</sup> बस्तुधों के नाम, स्याल-कुर्यन, आदि सैकड़ों से मीतों के लूट समय का ज्ञान हो जाता है । कभी-कभी परम्परा से प्रचलित गीतों में जो मयै शब्द स्याल या होते हैं, किन्तु इससे गीतों की आयु नहीं बरलती । पुपनी रोली बरीन रोली से भिन्न होती ही है । उसे पहचानने में अक्षिण नहीं होती । दो पाठकों का संयोग भी शक हा सकता है—केवल हंसि और पक<sup>३</sup> को आक्षयकता है । अक्षिण गीतों का अल निर्णय कबल अनुमाव

गम्य ही अभिन्न सम्भव है। व्यक्ति-विशेष का नाम गीत में आ जाने से भी गीत का समय मिला जाता है। युद्ध की महंगारी का परिचय स्त्रियों के गीतों में उपबोगी वस्तुओं के व्यञ्जित के समय झलकता है। ऐसे कई गीत हमें उपलब्ध हुए हैं। सत्रियों से सम्बन्धित गीतों की भी कमी नहीं। काल विचार्य की दृष्टि से सत्रियों के गीत अत्यन्त ही उपयोगी हैं।

मह कठाने की आवश्‍यकता नहीं कि प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर गीतों के गाये जाने के उल्लेख मिलते हैं। ११वीं शताब्दी के 'अभिलाषार्थं चिन्तामणि' ग्रन्थ में लोमनेव ने स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख किया है। 'संगीत-रत्नाकर' में 'ओवी' (मराठी) को एक गेय प्रकार बताया है, यद्यपि उस काल की 'ओवी' उपलब्ध नहीं है। गीतों को यह परम्परा अत्यन्त ही पुरानी है। जब हम अपौरुषेय गीतों पर विचार करते हैं तो हमें उनकी प्राचीनता पर पौरुषेय गीतों की अपेक्षा अभिन्न विश्वास करना पड़ता है। पुराने शब्दों के अनेक विकृत रूप आज के गीतों में मिलते हैं जो गीत की आयु की ओर संकेत करते हैं। उदाहरणों पूर्व के शब्द गीतों के माध्यम से जैसे आ रहे हैं। 'क्य' शब्द को ही लीखिए। इसका अर्थ है 'पति'। शब्द पुराना है। यजुष्यान, मासवा, निमाइ, युम एत, बुन्देसल्लवह, अयन आदि में इसका प्रयोग बचकर मिलता है। एक मराठी गीत में इसके प्रयोग को देखकर विश्वास किया जा सकता है कि गीत अभिन्न प्राचीन होगा :

सामु बाईं सामु बाईं मळा भाळं मूच  
मळा काय पुसठेस बरीच विसठेस  
पुम का आणुल्या कपाळा ।

परम्परा से जैसे आते हुए गीतों में मायागत फल नये शब्दों के ब्यवहार आ जाता है। किन्तु ऐसा केवल नगरों के विक्रमकों गाँवों के गीतों में ही होता है। मुरारामों के मीठर कम-से-कम चार पीढ़ी पुराने अर्थात् दो तीन शताब्दी पूर्व के गीत मिलते हैं।

गीत की तीन अवस्थाएँ

अपौरुषेय वादमय में गीत निर्माण की तीन अवस्थाएँ स्पष्ट दी जाती हैं—

१. लयबद्ध शब्द-रचना,
२. लयबद्ध शब्द-रचना में अर्थ की संगति, और
३. अर्थ-प्रधान लयबद्ध रचना।

मनुष्य में स्वभावतः नादप्रियता अवस्थित है। नादयुक्त शब्द-रचना की प्रथम स्थिति उसके लिए सहज सम्भव थी। विशेष रंग से किसी बात को कहने का ज्ञान बाद में उत्पन्न हुआ। नाद के माध्यम से अर्थ की अवस्था प्रकट हुई। यह संगति अल्पक उपयुक्त प्रतीत हुई। अर्थ के संतर्ग से नाद को महत्त्व मिलाने लगा। बाद में अर्थ पर कभी-कभी हानी होकर अपने प्रभुत्व को बनाने का प्रयत्न करता रहा। यह वृत्ति अवस्था थी जिसमें नाद और अर्थ के बीच विच्छेद-रूप की दृष्टि से संघर्ष हुआ। अन्तिम अवस्था में अर्थ का प्राधान्य हुआ और नाद का सहयोग उसके लिए अनिवार्य विद्य हुआ। आद्य को गीत एवं कबार्पें प्राप्त हैं वे सभी वाचक हैं। बाद उनके अर्थों को उत्कर्ष प्रदान करता है।

पहेलियों बच्चों के खेल-गीत, अथवा मण्डवर्ती उत्तर भारत की स्त्रियों के खमाली गीतों में अविच्छेद लयबद्ध शब्द-रचना मिलती है। उदाहरणार्थ

सरर सरर सतरी सरकाने बाधा कौन  
सीता बच्ची सासरे मनावे बाधा कौन

(बही)

× × ×

आसक्त्यारक्त, पतूर का गूदो  
गाव छ मारकप्यो वूर छ मिटा

(शहर का छठा)

देव, भईभी, कृष्णा ( बिनाइ में सखला ), पड़व्या, एताद्, गंगो, आदि बच्चों के गीतों में लयबद्धता के साथ अद्विष्ट संवाग एवं वाद

बार आने वाली टेक लग ही स्थिति बनाने के लिए आवश्यक होती है।  
वेक्ष्य :

वचोद् वचोद्  
काठी प मुर्  
मारो बेरी चर्  
वचोद्-वचोद्—

२३३५

( निमात्र )

× × ×  
बिन्क बिन्क बिन्क  
गहर बाबे घाम्हा पुई  
× × ×  
शाखु की शाखु की  
दुष्की माष्की पाळकी  
पगवा पू चर् पगवा पू

उक्त उदाहरणों में इटैलिक पदक अर्पण हीन हैं। अथहीनता का यह लक्षण प्रथमावस्था का लक्षण है, यद्यपि इनमें आगामी अवस्थाएँ अमरा आ मिली हैं।

दूसरी अवस्था में शुद्ध-रचना में अर्थ की संगति आने लगी। एक पंक्ति के परचात् दूसरी पंक्ति सार्थक हो, इस बात का प्रबल गीतों में मुख्य गुण। एक का सहाय छोड़ देना कभी सम्भव न था और न रहेगा। विना एक के आगामी पंक्तियों की दृष्टि में बाधा पहुँचती है। सबयुक्त अर्थगत शुद्ध विना उठके प्रगट हो ही नहीं सकते। वह तो वास्तव में 'पार्श्वसंगति' का काम करती है।

स्त्रियों द्वारा रचित लोपी गीतों में कवियों के अन्य गीतों की अपेक्षा अर्थ की मात्रा अधिक पाई जाती है। भुन अथवा एक वहाँ केवल प्रमाण के हेतु प्रयुक्त होती है। कन्तुओं के नाम बार बार दुहराने अथवा वहीन कन्तुओं के नाम जो-ने की प्रकृति स्त्रियों और वास्तविकों के गीतों में सर्वप्रथम

है। अर्ध की संरक्ति के साथ शत्रु कपालकों का प्रवेश भी हुआ। ये अर्ध मन्त्री, संघा, पुत्रांग्र या केरा के गीतों (पेटी की गाथी) में वे प्राप्त होते हैं।

स्त्रियों के गीतों में अिन कपालकों का प्रवेश है वे उन्हीं के धीमन् से अकवर्ति हुए हैं। उल्लेखनीय पार्श्व के माध्यम से स्त्रियाँ अपने का की अटमार्य गुम्फित कर देती हैं। इसी अवस्था में अर्नोत्तर प्रकृति का भी विकसत हुआ। विचारों का उदक अर्नोत्तर शैली के गीतों में लक्षणीय है।

मराठी गीतों में 'अस्त' के गीत (अपट्टे श्रुत) अवरक्षित अन्द-रचना है। अन्व गीतों में अैरुकी वीत प्रायः शिथिल होते हैं। ऐतों के गीतों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। 'अोवी' पृथका को पहुँचा हुआ रूप है। अस्त अनेश्वर ने अपनी अोवी के सम्बन्ध में कहा था कि उसे भी गा सकता है वही गावे, अन्वया पहचर ही नदे। 'अोवी' की अवस्था के पीछे यह परम्परा मराठी लोक-साहित्य में उल्लेखनीय है।

'उत्पत्ता' मराठी लोक-साहित्य की दूसरी सम्पत्ति है। स्त्रियाँ प्रायः पुरुषों के नाम नहीं लेतीं। हिन्दू स्त्रियों का यह प्रचान लक्षण है। प्रसंग विशेष पर जब उन्हें अपने पति का नाम लेना पड़ता है तब मनोरञ्जक शब्द रचना के माध्यम से वे अपने पति का नाम व्यक्त करती हैं। ऐसा किशान है कि नाम लेने से पति की आयु क्षीण होती है। इसी अरथ प्रथम बालक अथवा बालिका के नाम भी नहीं लिने आते। उन्हें किसी बरु नाम से पुकारा जाता है। अनेश्वर के समय 'उत्पत्ता' परम्परा विद्यमान थी। 'अस्मिन्नी लक्ष्मण' में अकनाय ने भी विशाद प्रसंग में इस परम्परा का यथोचित बखन किया है। 'उत्पत्ता' अनेक रूप में सम्पूर्ण मराठी समाज में प्रचलित है। इसमें नय लक्षण के लिए मार्ग अस्त है। 'उत्पत्ता' का एक उदाहरण है —

अंशरुपा रात्री अमकसा काजवा

'शंकरराज पाप या अजवा

'अपीरुपेय बाह्मण', जैसा कि ऊपर बताया गया है, विभिन्न रूपों

में है। उक्त विस्तार पुरुषों के लोक-साहित्य की अपेक्षा अपेक्षित विद्यालय है। गद्य के क्षेत्र में उपवास, अथ, त्रौहार और अनुपमिक लोक-क्यापों आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। इस दिशा में स्वतन्त्र प्रत्य हिन्दी तथा अम्य भाषाओं में अपेक्षित हैं। गुजराली में रमंदारंकर साखरंकर द्वारा लिखित 'बागर स्त्रीओ मों गाकता गति' और मारवाड़ी में वाचनन्द ओम्ब द्वारा सम्पादित 'मारवाड़ी स्त्री-गीत संग्रह' ध्यान देने योग्य प्रत्य हैं। प्राथमिक आचरणकता स्वतन्त्र रूप से अपौरुषेय वाङ्मय के प्रकाशन की है। अतएव उक्त आलोच्य स्वरूप अपेक्षित होगा। हिन्दी के इति क्षेत्र में इस अभाव की पूर्ति होनी चाहिए।

## लोकगीत क्या है ?

पैरी के अनुसार लोकगीत आदि-मानव का उद्गात्मय संगीत है। युष्मत्की में पनपते हुए मानव में जब थोड़ी-बहुत बुद्धि आर और उसके आचार पर उसमें भावनाओं के अंकुर फूटे तो अक अने के लिए उक्त विद्वत् अज्ञाप लेना आरम्भ किया। वही आदि-संगीत पैरी के शब्दों में लोकगीत है। (This spontaneous music has been called Folk song) अंग्रेजी का शब्द Folk song (फोल्क सॉंग) जर्मनी के volkstied का अपभ्रंश है। अस्तव जन-समाज में जेहन अचेहन रूप में जो भावनाएँ गीत बद्ध होकर व्यक्त हुए उनके लिए लोकगीत उपयुक्त शब्द है। यिम के शब्दों में 'लोकगीत अपने आप बनते हैं।'

जन जीवन के माथ अविषयक तो होते हैं, किन्तु अंधित नहीं। वहाँ के अंधित हो पाते हैं, देश, अज्ञ और परिस्थिति की सुवाा उनमें बालती है। जीवन का रंग उनमें पमच्छा है। उनके अंजन में 'बनना और बिगड़ना' एक प्रकार से गति की सुचना का बाइक है। गीतों के रूपों में वहाँ जन के माथ उठे हैं, वहाँ उनके बाल बिलरकर देकर बड़ी गए। लेनों में, गीतों, पहानों, मैदानों या रास्तों में अथवा घरों में, आपसी बलों में, बिरह में, खठना में, हल पनाते हुए, अेरुह पर, सुद के समब, मेल-कूद या ईली मचाक में, वहाँ यी हा अलग अलग अकतयों पर गीत बनकर बर्यों में

फूटे हैं और फूटकर निकलते-मनकलते, नये कर्णों और शब्दों की चोड़-तोड़ के साथ कुछ समय तक टिकते अवश्य हैं। नये गीतों के साथ पिछले बुलते जाते हैं। नए पौड़ी, नये माण, यही गीतों की परम्परा है। गीतों में विशाल की तराश बही, मानव-संस्कृति का साख्य और व्यापक भावों का उभार होगा है। मावो की लड़ियों लम्बे-लम्बे खेतों-सी स्वच्छ पेड़ों की बंगी कालों-सी 'रफ' (Rough) और मिट्टी की तरह सत्य है।

गीतों की यह परम्परा उष तक सीमित है, जब तक मानव का अस्तित्व ब्रह्माण्ड है। आदि-मानव के कष्ट से जो विह्वल भाव कमी निकले थे, अज्ञानत्व में वे गीत बन गए। गीतों के प्रारम्भ के प्रति एक सम्झना हमारे पास है पर उच्छ्रब्द अन्व की ओर रूपना नहीं। यह वह बड़ी बात है जिसमें अनेक छोटी-मोटी बातों ने मिलकर उठे सागर की तरह गम्भीर बना लिया है। सन्धियों के पास प्रतिपातों ने इसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने जाने-जाने बुने हैं। स्त्री-सुख ने बह-कर इसके माधुर्य में अपनी बकल मियाद है। इसकी ध्वनि में बालक सोते हैं, बच्चों में प्रेम की मस्ती आर है, बूढ़ों ने मन बहलाए हैं, वैपगिणों ने उपवेशों का पल क्यया है, बिछरी मुनधों ने मन की क्लृप्त मियाद है, विषबाधों ने अपने प्रकृमि कीकल में रह पाया है, पथिनों ने बध्मबटें बूर की हैं, विनागो ने अपने बड़े-बड़े खेत खोते हैं, मन्धूरों ने विद्याल मन्नों पर पत्पर बहाए हैं और मोबियो ने कुटकुले खोदे हैं।

आदि-काल में जब सामाजिक चेतना विकास की ओर गतिरहित थी, उली समय ऐसी शक्ति का बन्म हुआ जिसका बीकल से अन्वय था। धीरे धीरे प्रकृति के कुछ मार्गों पर जब मानव की विजय के आहार प्रकृ हुए तो गीतों में भी इस विजय के प्रति म्बनाएँ स्पृक हुईं। प्रकृति के विहराल रूप से परस्त होकर अकेला मानव उसके सामने मुग्ध भी है। विभिन्न दृश्यदृश्यों में इस प्रकार मुग्धने की अपेक्षा सामूहिक रूप से उच्छ्रब्द म्बना करने की सम्मम घोड़े ही कल के बाद आ गए। संगठन का मूल्य और सामाजिकता की आकर्षकता को उठने समम्य। अत सामाजिक तत्व को



लोकगीत—‘प्रकृति के उद्धार’—संस्कृत-मद्रक से बूढ़, पारदर्शी लीले की तरह स्वच्छ हैं। सरलता, रस, माधुर्य और लज इनके गुण हैं। प्रकृति के इन उद्धारों को समाने में पुरुषों की अथवा स्त्रियों का अधिक हाथ रहा है। कवय, हास्य, शृंगार आदि रसों से भरे हुए वे गीत कवियों से फुलकर युग-युगों से कवियों ही पर फैलते चले आ रहे हैं।

समय ने इन्हें कुचलने का प्रयत्न किया वे कुचले भी गए, पर वह अब तक मलाबरोरों की मीठी मौसम है। गीत बचते हैं और बिगाड़ते हैं। इतिहास हममें किया बैठा है। देश की तत्कालीन परिस्थिति-नीति की मानकारी हमें इन गीतों में मिलती है। मानव-वादि की विपद्-माद-म्वम्बना इन गीतों की हर कड़ी पर बाध्य है। नापी-हृदय की विद्यास्तता हम पग-पग पर इनमें पाएंगे। माता के हृदय में अपने बालक के प्रति ठठने वाली मुहावनी लोटियों, प्रियतम के विपद् में ठठने वाली नव-नयू की ठठपन, विषया की कठक, कन्या का हास्य, भूले की बहादुर, पति-पत्नी के मिलन-विपद् की कथा, उलाहने, पहेलियों आदि इनमें अंत-प्रोत्त हैं। मानव का इन गीतों में जन्म से लगाकर मृत्यु तक सबकुछ सम्भाव है। जन्म पर ‘सोहर और बच्चा’ के गीत, विवाह पर ‘कन्या बली’, हलदी आदि के गीत, जनक पर पति, परदेश-यमन पर गीत, आगमन पर गीत और यहाँ तक कि मृत्यु पर भी गीतों का गाथा बाला एक विवाह के रूप में मिलता है।

लोकगीतों का अन्त विरोध महसूस है। इत सम्भाव में परिणत हवापिप्रसाद विवेकी के विचार उल्लेखनीय हैं। आपन लिख है—“ग्राम-गीतों का समस्त महसूस उनके व्यंग्य-सौम्य तर्क ही सीमित नहीं है। इनका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग है एक विद्यालय सम्पत्ता का उत्पादन को अब तक का ही विस्मृति के समुद्र में डूबी हुए है या यत्न सम्पन्न की गई है। आर्य आगमन के पूरे बहुत ही समृद्ध आर्सेनल सम्पत्ता मातृकप में वैसी हुए थी, उसके भाव ही और भी कीवियों ह्यो-मायी सम्पत्तार्थ इत विद्यालय भू-यम में वैसी हुए थी। आपों ने राजनीतिक रूप में तो भारतवर्ष को जीत लिया था, पर वे सांस्कृतिक रूप में पूरा रूप से यहाँ के मूल निवासी के

द्वारा प्रस्तुत हो गए थे। वहाँ की मूल सम्प्रदाय वैदिक सम्प्रदाय से प्रथम भिन्न थी और बाद में लोकगीत, स्त्री-गायन, पौरुषिक परम्परा आदि के रूप में विकसित हो गई। प्रस्तुत इस सम्प्रदाय के वेद (भक्ति) हैं। वेद की वाद अपने आधुनिक युग में भक्ति कहलते थे। वेद की गायों की महान् शक्ति के गीत ही थे और ग्रामगीतों की शक्ति ही सुन-सुनकर वाद किये जाने से। लौकिकयुग के बाद में भक्ति से उत्तरकर लिपि का रूप बाराह कर लिखा पर हमारे ग्रामगीत का भी 'भक्ति' ही है। बिना प्रथम के ही द्वार्य-सम्प्रदाय का जन होता है, उन्ही प्रकार ग्रामगीतों द्वार्य-पूर्व सम्प्रदाय का जन हो सकता है। ईद परम्परा के प्रथी विद्वान् बटि ब्रह्मा न समझे, तो जोर देकर कहा था सकता है कि ग्रामगीत का महत्त्व 'मोहन-बोदको से नहीं अधिक है। मोहन-बोदको लीले सम्बन्ध ग्रामगीतों के महत्त्व का जन दे सकते हैं।<sup>११</sup>

लोकगीत हमारे विचार के इतिहास की अनुसंधान निधि के समान हैं। भारतीय हृदय की उमल पुमल, सुन-सुन, संयोग वियोग आदि की मूल गायें मिन्य-मिन्य प्रयागों के गीतों के रूप में व्यक्त हुए हैं। इस अनुसंधान रत्न-राशि को यदि हम जमा न कर सके तो अपने हृदय स्वरूप विद्वत् होकर बरख जानना।<sup>१२</sup> देश का सम्बन्ध इतिहास और उन्मूल वैदिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुपुष्ट है कि इन्का वाद हमारे लिए दुर्लभ की बात होगी।<sup>१३</sup>

लोकगीतों में भावों का अक्षेप महत्त्व है। अक्षेप के मातृ इन्में रूप गये हैं। समाज का कौनसा पक्ष डकड़ा है मितक रूप इनमें न उठता हो। अक्षेप में अक्षेप और अक्षेप की तीमार्द इन्में मिली हैं। अनुसंधान की छात्री और उन्मा इन्में पुले-सुं इ बोलती है। भावों की गहराई और

१ 'लोकगीतों का परिचय' : रयामचरण शुभे । दुल्का की भूमिका स बद्ध

२ छात्रा काजपतराय के पत्र से उद्धृत, 'अविता श्रीपुरी, भाग २ की रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ ७७

व्यापकता हममें ऐसे कलात्मक ढंग से सुल-मिश्र गद् है कि अप्रच्यर्त होता है। टोक 'सागर में सागर' की ठक्ति इसके साथ प्रकृत होती है।

लोकगीत लय के बिना अधूरा है। जन्साहसोपीडिया क्रियात्मिका के एक लेखक का कथन है—“श्रेष्ठ मी गीत, यहाँ तक कि कैसा ही छगीत, लोक गीतों पर निर्भर है। छगीत की दृष्टि से ये गीत बिना किसी वाच-मन्त्र के स्वाम्यात्मिक हृदयस्पर्शी स्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकगीत मानव-जाति के हृदय से, अपने आत्माओं द्वारा बन्ध प्रकृति-प्रदत्त आवाज के द्वारा आत्मात्मक कुम्हकर प्रगत होने वाला संगीत है, जो हृदय का वाच इच्छा करने के लिए मन्त्रों की अभिव्यक्ति के निमित्त बोलने की अपेक्षा माकर गीतों द्वारा व्यक्त किया जाता है।”

लोकगीत की व्याख्या कई विद्वानों ने की है। मरानी के अनुसार लोक गीतों की सदाशिव कड़े का कथन है—“शास्त्रीय नियमों की विरूप परवाह न करके सामान्य लोक-व्यवहार के उपयोग में जाने के लिए मानव अपने आत्म-धरम में जो लक्षोबद्ध बर्तनी सहज उत्पन्न करता है, वही लोकगीत है।”<sup>१</sup>

विरहमण्टी के अक्षया साहित्य के प्राध्यापक श्री कुम्हविहारी दास के शब्दों में “A Folk song is a spontaneous outflow of life of the people that live in more or less primitive condition outside the sphere of sophisticated influences.”

(लोकगीत लोगों के इस जीवन की प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुतन्त्र प्रमाणी से बाहर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में है।)

रेवेन्द्र सत्यापी लोकगीत का मूल भारतीय संगीत में करते हैं—“The seed lies in community singing.”<sup>२</sup>

१ लोक-संस्कृति विरोपांक, सम्मोहन-पत्रिका, मराठी लोकगीत, पृष्ठ २२०

२ ए स्टडी ऑफ ओरिजिनल लोकगीत, पृष्ठ १

३ मीर अर्ध पीरध, पृष्ठ १२२

### विशेषताएँ

डॉक्टर यदुनाथ सरकार ने लोकगीत की विशेषताएँ निम्न शब्दों में व्यक्त की हैं—“Rapidity of movement, simplicity of diction, primary emotions of universal appeal action rather than subtle analysis broad striking characterisation, thumb-nail sketches of background and the sparsest use (or rather complete avoidance) of literary artifices—these are the essential requisites of the true ballad”

(ग्रन्थ की प्रस्तावना, शब्द विन्यास की सादगी, निरव्ययपक मर्मस्पर्शी प्राकृतिक और आदिम मनोरोग, सूक्ष्म किन्तु प्रत्यक्षोपात्त चरित्र-चित्रण, श्रीहृत्पत्नी अथवा रेशमखल का स्पष्ट अर्थन साहित्यिक कृत्रिमताओं का न्यूनतम प्रयोग या सफ़ा बहिष्कार—सन्धे साक्षात् की ये निरव्यय आक्षेपक विशेषताएँ हैं ।)

क्रमबद्ध विद्वान् मोरारि जीपर ने सन् १८५३-५४ में लोकगीतों के सामान्य लक्षणों पर लोकगीत संग्रहकों के समस्त अनेक विचार प्रकट किए थे । उनके अनुसार लोकगीतों के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं—

१ ‘अत्यानुप्रास के स्थान पर अति-साम्य का प्रयोग’

२ पुनर्वाक्य (अनुप्रास में)

३ लीन, पौंज, सत आदि संख्याओं का बार-बार प्रयोग तथा

४ दैनिक व्यवहार की वस्तुओं को बताने-काने की कइमा ।

भारतीय गीतों में इन लक्षणों के अतिरिक्त और भी लक्षण उल्लेखनीय हैं, जिन पर नीचे प्रकाश डाला जा रहा है ।

नाम बोलने की प्रवृत्ति—यह प्रवृत्ति प्राचीनता की विशेष है । गहनों के नाम, कुड़मियों के नाम, मिट्टारों के नाम, दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के नाम आदि गीतों में बार-बार आते हैं । इन नामों से गीत के रस का रस हो जाता है । अतिपम नाम अक्षय परम्परागत गीतों में बार-बार दोहराए जाते हैं, पर नये नामों का भी उनमें प्रयोग स्वामाबिक है ।

१. वैजय, लोचमास्या हूँ, सन् ४९

बट्ट बोहना—हैंसी अरापी पर फकर बट्ट बोहना । यह कृषि-सम्बन्धित अथ युग का संकेत है जब कि गाँव बस रहे थे । दूर की वस्तुओं को देखने के लिए हैंसे वृष, हूँगर अथवा समृद्ध प्रान्तों में हैंसी अरापी पर फकरा गइता या । बट्ट बोहने की यह दृष्टि भारतीय इतिहास में कलात्मक चित्रों की प्रेरक रही है ।

प्रस्मोत्तर प्रवृत्ति—सीधे प्रश्नों के सीधे उत्तर । गीतों में यह प्रस्मोत्तर प्रवृत्तिसौ सादगी और विकाररहित सामाजिक भावना से सम्बन्धित है ।

संख्या—सप्त, नौ, पौंच, बार, आदि संख्याओं के अतिरिक्त द्वासीस और बत्तीस संख्याओं का भारतीय गीतों में अनेक बार उल्लेख प्राप्त होता है ।

सबमान्य सिद्धान्तों के अनुसार लोकगीतों की अर्थ्य विशेषताएँ भी हैं जो सभी देशों के सभी गीतों पर लागू होती हैं । इस सम्बन्ध में सबसे पहले हमें लोकगीतों को कलागीतों से पृथक् करना होगा । कलागीत साहित्य के अंग हैं, पर लोकगीत अस्तुति से सम्बन्धित हैं । लोक-कविता कलायुक्त अर्थ्य से कहीं सर्वथा भिन्न है । कहीं-कहीं भारतीय गीत परम्परा में हमारे साहित्य के दोनों अंग एक-दूसरे को स्पर्श करते हुए टिकते हैं । सन्त साहित्य का अविच्छेद परम्पराभूत होकर भी लोक से इस तरह जुला-मिला है कि उसे हम कला की भूमी में स्वीकार करते हुए भी लोक की ही सम्पत्ति कह सकते हैं । कुछ पारंपारिक विद्वान् भी मौलिक परम्परा से प्राप्त गीत-साहित्य को कलापूर्ण साहित्य में नहीं मन्ते हैं । अतिपम भारतीय विद्वानों की भी यही धारणा है । पर संक्षुब्ध चिन्तारों से ऊपर उठकर इस विषय में सोचना चाहिए । साहित्य लोक की वस्तु है । सामाजिक रूप से परम्परागत अथवा वैदिक सम्पत्ति होकर जगहों में कला उन्हें छू लेती है । उसी भाँति कला-गीत अपने मूल रूप में लोक-मानवाओं से परे नहीं हैं । दोनों की समन्वित मिश्रित ही रस-सुखि का कारण होता है ।

लोकगीतों की परम्परा मौलिक रूप में ही अदिक स्वीकृत है । प्रश्नों

में हवाई गीत कंठों पर निकले हुए हैं। प्रत्येक विषय के, प्रत्येक समय के, प्रत्येक भावों के गीत उपलब्ध हैं। मो० क्विडरिच का कहना है कि गिजा इस मौखिक साहित्य की शुरु है। सम्प्रदाय उसे गति से बढ़ करती है। थोरे थोरे व्यक्ति अपना भाति ज्यों ही लिखना-पढ़ना जान लेती है त्यों ही वह अपनी परम्परागत विधि को देव सम्झने लगती है। नि सन्देह गिजा और सम्प्रदाय की वृद्धि के साथ हम लोक-साहित्य को इसी कारण से ह्रास होते हुए देख रहे हैं।

लोकगीतों में व्यक्ति का महत्त्व बढ़ी होता। उन्हें समूह द्वारा निर्मित माना जाता है। इसलिये व्यक्तित्व का अभाव और समूह अपना कर्तव्य विरोधियों के लक्ष्य उभरे मिलते हैं।

संसार में (१) अकृषिगता, (२) सामूहिक मूल्य-मूर्ति (३) परम्परा-समृद्धता अपना मौखिक-परम्परा गुण, (४) रूढ़ अतिरासोक्ति, और (५) संकीर्णता आदि गीतों की विशेषताएँ हैं।

एक विद्वान् के शब्दों में लोकगीत इस प्रकार के होते हैं—

✓ (1) anonymous (2) familiar to every one, (3) reflect the social values of the group (4) are learnt as a part of teaching. ¹

(नामरहित, सर्वज्ञान, समूह के सामाजिक मूल्य को व्यक्त करने वाले और उपरोक्तानक।)

सांस्कृतिक गीतों में इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त रस-सुन्दरि का वैशिष्ट्य है। इसलिये वे मात्र भी सम्म-समाज के हृदय को छूने की सामर्थ्य रखते हैं।

### लोकगीतों का ऐतिहास

लोकगीत बोलते वा मानव-समाज के विकास के साथ परवर्धने वाली मौखिक सम्पत्ति है, पर उनके भी अमरता उद्यमान की एक धारा है। सभी

¹ जॉन मूक: एन्नी, जलसमीक्षा पीअरर सर्वोद्देश्य, पृष्ठ ९

देशों में लोकगीतों का विकास समान रूप से हुआ है। ज्यों-ज्यों शब्द में अभिव्यक्ति का बल आता गया लोकगीतों में संगीत के माध्यम से समाज की भाव-धारा प्रकट होती गई। प्राचीन ग्रन्थों में इनके विकास का कहीं भी स्पष्ट रूप में मिलती है। वहाँ तक भारतीय गीतों का प्रश्न ही लोकगीतों के गाये जाने के अनेक उदाहरण उन्में पाये जाते हैं। पर भारतीय जन भी पद्यों के अन्य जन के साथ इस दिशा में बरतकर सहयोगी रहा है, अल्पक उल्लेख सम्भव इस बड़े दावे में भुला नहीं सकते। पद्यों पर वहाँ-वहाँ मानव-समाज संगठित हुए वही लोकगीत पनपे और परम्परा की पत्नी बनकर बसते रहे। (श्रुतियों में 'गायित्' शब्द पाने वाले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। विवाह के समय गाये जाने वाले गीतों के लिए 'रैत्री' या 'अपराधी' शब्द उपलब्ध है। इस प्रकार समस्त गाथाएँ अक्षरशः पर सामाजिक अवसरों पर गाई जाने योग्य होती थीं। इनमें लोकगीतों के उत्पत्तीय स्वरूप का संकेत मिलता है। प्रायः तथा अत्यन्त ग्रन्थों में भी अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ने 'शुक्' और 'गाया' में मेरु वस्तु किया है। 'शुक्' का सम्भव 'रैत्री' से है, गाया का 'मालुनी' से, अल्पक 'गाया' ही अधिक अर्थों में लोकगीत के निबन्ध है।

गाथाओं की इस परम्परा का रूप भारतीय साहित्य में बुर तक मिलता है। महाभारत के अग्रि-वर्ष की अनेक गाथाएँ बहुत पूर्व की प्रतीत होती हैं। इसी तरह 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'मैत्रायणी संहिता', 'पारश्वर पञ्चतन्त्र', 'आश्वलायन पञ्चतन्त्र', 'बलमीकीय रामायण', 'पाली ज्ञानक', 'भूमिदूषायक', आदि प्राचीन ग्रन्थों में गाथाओं की परम्परा के रूप मिलते हैं।

हाल की 'गाथा उत्तरती' के जन्म में लोकगीतों का महत्त्व बढ़ने लगा। अग्रवर्ष के विकास ने लोक-प्रवृत्ति वाणी की महत्ता चोखिल की। मिलजुबेद इस समय लोकगीतों की साहित्यिक महत्त्व अक्षय मिला होगा। प्राचीन ग्रन्थों में गीतों के गाये जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

मागकतकार ने लिखा है—

कव्यविहीनानिकव्योत्तुका पक्षे  
कर्मार्थं सोये समवेतवैपिठाम् ।  
वाग्दिव गीतविज्ञ संपन्नाचक्षे  
रयकन सुनोरभियेचर्षं सवी ॥

इससे बन्म-दिवस के उपसङ्ग में गीतों के सुस्थिति होने का स्पष्ट उल्लेख है। विष्णुका के शब्दों में—

विज्ञासमधुषोरकसम्पुसकडोकायोः कव्यधीः ।  
परस्परपरिस्त्रबाहूवयसिः स्वबोद्बन्धुरा ॥  
वासन्धि कञ्च हुंस्तीप्रसमकम्पिचोरः स्पष्ट  
अद्गमके प्रकुञ्जाः कञ्चम कयदनी गीतवाः ॥

संस्कृत की कव्यित्री ने उक्त पंक्तियों में पात्र सूझने वाली स्त्रियों के यत्न का वर्णन किया है। वे अपने हाथ में मूकता बाण्ड किये हुए बाण्ड दूर रही हैं। मूकता के उठने-गिरने व हाथ की बूझियों से पत्रि विचलती है और कुम्भर से मान में गति मिलती है।

नैपथपरिच में भी हर्ष ने भी स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीतों का वर्णन किया है। इस प्रकार गीतों के गाये जाने के संकेत दूर तक लक्षित में उपलब्ध हैं। इससी बात ने श्री कवानी स्त्रियों के गीत-गायन का उल्लेख किया है—

बही संग बहू सवी सबाबी ।  
गायत वीत मनोहर बानी ॥

उक्त शब्दों से गीत के प्रचलन का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, किन्तु गीत के बोले और गाने की विधियों का पता नहीं चलता। अक्षर अक्षर के पीछे प्रचलित थे। स्त्रियों और पुरुषों द्वारा गीत गाये जाते थे। गाने वाले समूह का एक मिला बाण्ड सदा ही है। यदि यह विरवात से बरा बाण्ड कि प्राचीन भारतीय शब्दों में शोक से सम्बन्धी अनेक सामग्री कवय पर परिष्कृत करके संकलित की गई है तो अस्तुति व होमी।



## गीतों के प्रकार

लोकगीतों का सामान्य वर्गीकरण (१) भाषियों की दृष्टि से, (२) संस्कारों और प्रथाओं की दृष्टि से (३) धार्मिक विरवातों की दृष्टि से, (४) आय के सम्बन्ध की दृष्टि से, तथा (५) रस-सृष्टि की दृष्टि से किया जा सकता है। यहाँ तक भारतीय गीतों के वर्गीकरण का प्रश्न है, इतना बतलना प्रसन्न किया गया है कि उन्हें श्रेणियों में विभक्त किया जाय। परिचित राम-मरेण विपाठी ने गीतों को (१) संस्कार-सम्बन्धी गीत, (२) लक्ष्मी और परमे के गीत, (३) धर्मगीत—स्वीहायों पर गाये जाने वाले गीत, भजन, आदि, (४) श्रुत-सम्बन्धी गीत-तापत्र, प्राग्जुन और शैव के गीत, (५) खेलों के गीत, (६) मिलनगीतों के गीत, (७) मेले के गीत (८) मित्र-मित्र भाषियों के गीत, जैसे झहीर, चमार, बोरी, पाठी, नाइ, कुम्हार, मुन्ना आदि, (९) वीर-गाथा—जैसे, आशुहा, लारिक, हीर-यम्ल बोला-मारु, आदि, (१०) गीत-रूपा—छोटी-छोटी कहानियाँ जो गा-गाकर कही जाती हैं और (११) अनुभव के कवच—जिन्हें धाप, भ्रूयों आदि श्रेणियों में विभक्त किया है।

कुछ वर्ष पूर्व मध्यभारत के इतिहास-शोधक श्री मन्मथ रामचन्द्र मानेण ने गीत-संग्रह की एक योजना बनाई थी। उस समय उन्होंने गीतों की एक सूची सूची प्रकाशित की जिसे यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक है। लोकगीतों को चार बड़े समूहों में उन्होंने बाँटा है। यद्यपि ऐसे समूह और भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं, किन्तु समग्र रूप से गीतों की एक बड़ी सूची प्रथम उपलब्ध होना अनिवाद्य है। श्री रामचन्द्र मानेण की सूची इस प्रकार है :—

## धार्मिकगीतों के प्रकार

१. संस्कार विषयक—(१) पुत्र धम्म शीघ्र, (२) लक्ष्मी के गीत, (३) लोक के गीत, (४) शाव के गीत, (५) बटोपनी-मैनेण बॉपन के गीत (६) सुपदन, (७) इनेऊ, (८) माम्मा के यहाँ पहली बार जाने के गीत, (९) पहली बार

बरात में जाने के गीत, (१०) टीका, (११) विवाह, (१२) द्विपयमन, (१३) द्विपयमन अर्थात् पने के गीत, (१४) समविषी के जाने के गीत, (१५) मौजान, वेबत्वापन, पुण्य बैठाने, कृपलनन, पद्मरत्न के गीत, (१६) तीर्थ-बाधा और गमल-आगमन के गीत, (१७) अन्वप्राशन के गीत, (१८) पलने के गीत, (१९) अयत्नी-गर्मबटी स्त्री विषयक, (२०) मठा कवन के गीत-मैत्र, (२१) बंकाद, (२२) पलक बौचना व मालना, (२३) मत्नी वा बाक के गीत ( सौंय कपटने पर ) (२४) मेसे के गीत, (२५) बन्मपौठ के गीत, (२६) छुनी स्वापना के गीत ।

१ माहवारी गीत—(१) बारह मासा, (२) मोरता-बौपन-बैब अरिबन, (३) यमगौमी, (४) अन्वप्रीब, (५) पछहरा (बेट अरिबन), (६) बैब रायनी, बैबठठान, (७) सावन हिंडोला, (८) साम्प्री, (भुंम्प्री इंडी के गीत), (९) भुंम्प्री, (१०) बीबा-मिठी के गीत—देव, (११) कुम्भकनमाधमी, (१२) करवा पौब, (१३) महालक्ष्मी (१४) बज्जना कृ, (१५) मोर कृ, (१६) नौबुर्वा (१७) रतगौर, (१८) अरिबि और माय-रत्न के गीत, (१९) होली, (२०) अहोप्री अट्टे अरिबि के गीत (२१) कबरिया तीब, भावय (२२) भुबरिया ।

३ सामप्रिबि-वेठिहासिक—(१) पन्नाकल, (२) बेला छटा, (३) होला मारु, (४) हरदोल, (५) बाबू के गीत (६) अलवेव के गीत, (७) कुँवर के गीत, (८) हीयमन, (९) बगव, (१०) मभारेव, (११) पंडित मेहरव, (१२) बाहरा पोट, (१३) असरव, (१४) हासी के पूबपे के गीत, (१५) अहैमा, (१६) सलगा सगहव, (१७) गोरु बारल, (१८) बुज्जाबीरास, (१९) बासीयम पटल, (२०) पापूबी के गीत, (२१) एबा केवद, (२२) अोल्लाबी, (२३) ठेकाबी, (२४) गोणबी, (२५) भेरुबी ।

४ विविध—(१) लेती बी कडाकरी, (२) अल बी कडल लतन होने के गीत (३) बापे पूबने के गीत, (४) बल व पनकी के गीत, (५) लाननी, (६) रसिवा, (७) सगल, (८) हृन्दप, (९) दाहे-सग्ली, (१०) कारटे, (११) नवैये, (१२) मधन, (१३) अरिब, (१४) निम्पू, (१५) पीम ।

लोकगीतों का विपणनकार बर्गीकरण काफी विस्तृत है। मात्र के रूप से ठकका घेन आरम्भ होकर मृत्यु पर समाप्त होता है। अतः शरीरक सूची भी पचास नहीं है। इन्हें अनेक प्राचीन के गीतों के नाम दृष्ट गए हैं। वैश्वानर इति से भारतीय लोकगीतों का वर्गीकरण संलग्न तालिका से अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

## ग्रामगीत : लोकगीत : जनगीत

पारिभाषिक प्रयोग पर विचार

राजस्थानी लोक-साहित्य के उन्नायक स्वर्गीय श्री सूर्यकाण्ठ पाटील ने 'राजस्थानी लोकगीत' (संस्कृत १३३६) पुस्तिका के आरम्भिक पृष्ठ की पाठ लिप्यन्तरी में 'लोकगीत' एवं 'ग्रामगीत' शब्दों के उदाहरणों प्रयोग के विषय में लिखते हुए हिन्दी में उस समय तक की इस प्रचलित मस्यदा को कदाचित् प्रथम बार भंग करने का प्रयत्न किया। आपने लिखा है—

“कुछ लोगों ने लोकगीतों को 'ग्रामगीत' भी कहा है। परन्तु हमारे ज्ञान से लोकगीतों को ग्राम की संकुचित सीमा में बाँधना उनके व्यापकत्व को कम करना है। ग्राम और नगरों के भेद अर्थात्वीर काल में बड़े हैं। गीतों की रचना में ग्राम और नगर का इतना हाथ नहीं है जितना कि वर्तमानकाल का—'लोक' का।”<sup>१</sup>

इससे स्पष्ट है कि लगभग दस वर्ष पूर्व हिन्दी में 'ग्रामगीत' शब्द प्रचार में आ गया था। इससे बहुत पहले पवित्र रामचन्द्र गुप्त ने 'ग्रामगीत' शब्द का ही प्रयोग किया है। किन्तु पाटीलजी ने सन् १९३८ में राजस्थान लिखने चौखाम्बी, अजमेरा द्वारा प्रकाशित राजस्थानी गीतों के

१ प्रथम संस्करण, पृष्ठ १

इसके अलावा 'राजस्थान के लोकगीत' शीर्षक से ही अभिहित किया। यद्यपि इसके चार पक्ष पूर्व राजस्थान के भी बगदीरसिंह येदशीत द्वारा संकलित मारवाड़ी गीतों का शीर्षक 'मारवाड़ी प्रामगीत' ही था, अक्टूबर सन् १९४० के लगभग 'प्रामगीत' और 'लोकगीत' शब्दों के अन्वय प्रयोग-विषयक प्रश्न का उठ आना स्वाभाविक था। यह प्रश्न मूलतः 'लोक' शब्द से सम्बन्धित रहा। इसमें उभेह नहीं कि अंग्रेजी के 'फोल्क' (Folk) शब्द के पर्यायस्वरूप हिन्दी में अन्य प्राचीन शब्दों की भाँति 'लोक' शब्द का अन्वय प्रयोग हुआ। अंग्रेजी में 'फोल्क' का अर्थ है लोग, राष्ट्र, जाति, सर्व-साधारण जनता वर्ग-विरोध। इसी शब्द से बने 'फोल्क-लिटरैचर', 'फोल्कलोर', 'फोल्कलॉस', 'फोल्कलॉग' आदि शब्दों के अनुक्रम 'लोक-साहित्य', 'लोक-बाधा', 'लोक-कथा', 'लोकगीत' आदि शब्द हिन्दी में गढ़े गए। पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'लोक' शब्द का अर्थ 'सर्वों और प्राणियों में फैली हुई सन्तुष्टि बस्तु है, जिसका आधार पौष्टिकता है।'।<sup>१</sup> इसी अर्थ में गीत के साथ 'लोक' शब्द जोड़ा जाना अतीव प्रतीत होता है।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने सन् १९२४ के वर्षात् उत्तर-भारत में गीत-संकलन का आन्दोलन किया। वे सन् १९२७ (८ दिसम्बर) को प्रयाग से बम्बई चला हुए। वहाँ जाकर आपने गुजराती और मराठी गीतों की पुस्तकें पढ़ीं। तब तक मराठी और गुजराती में 'लोकगीत' शब्द का प्रयोग होने लगा था। विरक्तः गुजराती में यह शब्द बहुत परिचित-सा हो चुका था, क्योंकि श्री फ़रेवन्द मेवाड़ी के सन् प्रवृत्ति से लोक-साहित्य को और सन् '२३ के पहले ही गुजराती गीतों को उचित का पुष्टी थी। उक्त सन् में प्रकाशित श्री मेवाड़ीजी की पुस्तक 'श्रीगुणी

१ यह प्रश्न का भाग में प्रकाशित है। श्री पारीक के अतिरिक्त डाक्टर रामसिंह एवं मरीचम स्वामी भी इसका सम्पादन हैं।

२ 'जनपद' वैमर्षिक (धक १), लोक-साहित्य का अध्ययन पृष्ठ ६६

उपार' के प्रथम भाग के 'रे-बोल' ( रे शब्द ) में इन प्रकार के पूर्व  
 पंक्तियों का उल्लेख किया गया है। सन् १९१० के लगभग रचनीत  
 ग्राम मेहता लिखित ग्रन्थ 'लोक-साहित्य' के नाम से ही प्रकाश में आ  
 गया था। श्री देवेन्द्र सत्याजी को इन दिनों अपने लेखों द्वारा प्रसिद्ध हो  
 रहे थे, सन् '१६ तक 'ग्रामगीत' शब्द का ही प्रयोग करते रहे।<sup>१</sup> इस सन्  
 के काछी पहले श्री त्रिपाठीजी का गीत-संग्रह 'कविता-कौमुदी' ( ५ वां  
 भाग ) प्रकाशित हुआ था।<sup>२</sup> उसमें 'ग्रामगीत' शब्द ही प्रयुक्त हुआ  
 है 'लोकगीत' का तो संकेत भी नहीं है। उसमें अंग्रेजी के 'फोल्कसंग'  
 का उल्लेख अवश्य है, जिसका हिन्दी अनुवाद आपने 'ग्रामगीत' ही किया  
 है। श्री एचि टाडूर द्वारा लिखित एक पत्र में प्रयुक्त 'रूरल सोंग' (Rural  
 Song) और 'फोल्क-लिचरेचर' (Folk literature) के पद्याम भी  
 त्रिपाठीजी ने कथना 'ग्रामगीत' और 'ग्राम-साहित्य' किये हैं। अत  
 'फोल्कसंग' और 'रूरल सोंग' दोनों ही त्रिपाठीजी के अनुसार 'ग्रामगीत'  
 ही हैं। इतना ही नहीं, आपने श्री लालपतराय द्वारा प्रयुक्त 'फोल्कलोर'  
 (Folk lore) का अनुवाद भी 'ग्रामगीत' ही किया है।<sup>३</sup> डॉ० छन्देन्द्र  
 न 'फोल्कसंग' के लिए 'ग्रामगीत' और 'फोल्कलोर' के लिए 'गीतकथा'  
 का प्रयोग किया है।<sup>४</sup> इन शब्दों के निश्चित प्रयोग की समस्या अपिचारा  
 में आत्र भी बनी हुई है। आत्र भी मूल से लोकगीत को 'ग्रामगीत' और  
 लोक-साहित्य को 'जन-साहित्य' कहा जाता है।<sup>५</sup> अस्तु, यहाँ तक हिन्दी

१ देखिए, 'हंस' (दरबरी १९१९) में प्रकाशित श्री देवेन्द्र सत्याजी  
 का लेख—'हमारे ग्रामगीत'

२ प्रथम संस्करण संवत् १९८९ में प्रकाशित हुआ

३ देखिए त्रिपाठीजी को लिखे गए पत्र कविता-कौमुदी, १ वां  
 भाग पृष्ठ ७७-७८

४ अत्र लोक-साहित्य का अर्थयत्न, पृष्ठ ३६

५ देखिए, कका कावेरकर लिखित 'जीवन विहार' (१९३०) के विचित्र  
 लोकगीत ('ग्रामगीत') तथा 'हमारा लोक-साहित्य (जन-साहित्य)

का प्रश्न है भी निपटारीकी का 'प्रामगीत' के प्रति विशेष मोह है। उन्होंने इस विषय पर कुछ दिन पूर्व पुनः विचार किया और 'प्रामगीत' शब्द को ही अधिक उपयुक्त बताया है। आपने लिखा है—“मैंने गीतों का नामकरण 'प्रामगीत' शब्द से किया है, क्योंकि गीत तो प्राम की सम्पत्ति है, शहरों में तो वे मरे हैं, बम्बे नहीं; फिर प्रामों का यह गौरव उन्हें क्यों छीना जाय। प्रामगीत तो शहरों में भी प्रत्येक संस्कार में, भारतीय त्योहारों और सामंजसिक उत्सवों में गाये जाते हैं। इसमें मैं उचित सम्मति हूँ कि गीतों की यह यादगार 'प्रामगीत' शब्द हाथ लगायी हो जाय।”<sup>१</sup> गीतों के प्रति विशेष प्रेमका माकन-प्रधान होकर वह यह भी कह करते हैं कि “मेरी राय में 'प्रामगीत' किसी पुष्प का स्त्री विराप की रूपना नहीं है, बल्कि स्वयं प्रकृति का गान है” और “देना की तरह 'प्रामगीत' भी अपौरुषेय है।”<sup>२</sup> आपने इस भाग्यवशी कल्प को जालों की पंक्ति में स्पष्टिष्ठ करते हुए शहर की बरता हाथ इस गौरव का स्पर्ष लय जाना उन्हें स्वीकृत नहीं, क्योंकि 'लोकगीत' 'लोक' के संयोग से बना है और उसका तात्पर्य शहरों और प्रामिण्य दोनों बनता है। पर चूंकि गीतों के रचयिता गाँव वाले हैं तो शहर की लोकी को स्पर्ष भेप क्यों दिया जाय। “अतएव मैं फिर भी यह उचित सम्मति हूँ कि 'लोकगीत' की अपेक्षा 'प्रामगीत' शब्द ज्यादा उपयुक्त और स्पष्ट है।”<sup>३</sup>

'लोक-माकण दूहा' ( संस्तर १६३१ ) में लोकगीत 'देवता' का परबोध-वाची बताया गया है। लोक ने 'लोक-काम्य' की भी हरी धेरे में गिरा है।<sup>४</sup> सिद्धिक ने अपनी संकुचित दृष्टि से इस विषय में अपनी मौलिक परिभाषा दी है। उसके शब्दों में 'इह इह ए लौर एवड विज्ञांगुव दू ही इतिहरेद।' ( यह अनुभूति का अर्थ है और बनता की सम्पत्ति है। )<sup>५</sup>

१ १ ३. 'अवपद' प्रेषितिक, अंक १, प्राम साहित्य, पृष्ठ ११

४ बागरी प्रचारिणी सम, काशी, द्वारा प्रकशित, प्रथमाहति,

पृष्ठ ४१

५ लोका-माकण दूहा, पृष्ठ ४०

‘उत्तरायण के लोकगीत’ के सम्पादकों ने ‘आर्यम मनुष्यों के इन्हीं गीतों का नाम लोकगीत’ बताते हुए लिखा है कि लोकगीत सन्वे काव्य हैं।<sup>१</sup> एम्बेन्डर हुकस की काम-विशेषक व्याख्या के अनुसार उनके द्वारा ‘शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के समात्मक सम्बन्ध की रक्षा होती है।’ तथा ‘सृष्टि के नाम बदलने के साथ मनुष्य की मूलवी रागात्मिक प्रवृत्ति का समन्वय ही अस्तित्व का रहस्य है।’ इस पारिभाषिक अनुसरण से लोकगीत स्वयम्भूत ‘काव्य’ की संज्ञा पाने के अधिकारी हो जाते हैं।

हृष्यदेव उपाध्याय ने ‘ग्रामगीत और लोकगीत दोनों को दो भिन्न श्रेणियों में माला है। आर्यके अनुसार ‘फोल्कसंग्राम गीतों हैं और ‘प्लोड’ ‘लोकगीत’। ‘ग्रामगीत से मतलब आर्यजन उन गीतों से है जो वे हैं— लोकगीत वे हैं जो प्रबन्धात्मक हैं और इनमें काम की प्रबन्धता है, गान नहीं।’<sup>२</sup> ‘कल्याणकर के अनुसार मण्डी में ‘लोकगीत’ ‘जन-पदवीत’ एवं ‘ग्रामगीत’ तीनों ही शब्द एकार्थी हैं तथापि ‘लोकगीत’ शब्द ही व्यापक प्रयोग में आता है।’<sup>३</sup> इन्होंने सम्येह नहीं कि लोकगीत शब्द विपदायी है—उसकी व्याख्या में बाह्र कतर नहीं। अंग्रेजी के एक कोर में ‘फोल्कसंग’ का अर्थ है—‘बोह मी गीत या कीर-गीत जो लोक में उल्लस हाकर परम्परा द्वारा दूरतों को लीला काय, या बाह्र यति जो इसके अनुकूल सिखा काय।’ एडुल गीत-संस्थापक ने अपनी हास ही में प्रदर्शित एक पुस्तक में गीत के स्थान पर ‘गीतों’ शब्द का प्रयोग किया है।<sup>४</sup> मण्डी

१ प्रबन्धात्मक, रा० के छा० पृष्ठ ६

२ जनपद : वैसासिक, मोडपुरी की गी० पृष्ठ ३८

३ ‘भारती भाषेत लोकगीत, जनपद गीत व ग्रामगीत हे सर्व शब्द एकमेकाके अर्थों कापरतल तरी इन्हीं लोकगीत का शब्द आस्त उपयोगात् येत कन्हे—।’

(खेचक को दिले एव एक पत्र से उद्धृत)

४ केम्पर्स टकरनीपुप सेन्धुरी दिवसनेरी पृष्ठ २१६

५ ‘भारति हिन्दो की कदाविनी और गीतों (करबरी, १९२१)



में यही शब्द बहुवचन में प्रयुक्त होता है और अनेक पुस्तकों के शीर्षक में भी रत्नक की मूर्ति प्रयुक्त किया गया है, जैसे—'बर्हाड़ी लोकगीतों' 'बालपद गीतों', 'कुनी मठकी गीतों' आदि। हिन्दी के लिए यह पदों का अर्थ नया है।

उक्त प्रकार से यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इन दिनों प्रचलित लोकगीत, ग्रामगीत, बरगीत, आदि विभिन्न शब्दों के प्रयोगविहित क सिये जायें। गीत शब्द की व्याख्या तो हिन्दी में बहुत हो चुकी है। का केवल इसके अर्थों पर विचार करना है।

'लोक' बस्तुतः सामान्य एवं नागरिक जन के सामान्य अर्थ में उद्भव व्यवहृत होता आता है, अतएव जब 'लोकगीत' का प्रयोग किया जाय तो सामान्य जनता द्वारा उद्भूत मौखिक गीत के ही अर्थ में उसे ग्रहण किया जाय। इस प्रकार लोक-नाट्य, लोक-कथा, लोक-साहित्य, आदि शब्दों के अर्थ भी सम्बन्धित हो जाते हैं। लोक-साहित्यों का प्रतिबिम्ब केवल ग्राम-गायकी जनता से नहीं हो सकता। ग्राम की सीमाएँ संकुचित हैं और ग्राम एवं नगर के मध्य को मिटाने वाले 'लोक' शब्द की परिधि दोनों को अपने में समेट लेती है। 'ग्रामगीत' (जैसा की पवित्रत रामनरय विपानी ने बताया) ग्राम की सम्पत्ति है और लोकगीत के ही अन्तर्गत आते हैं। 'लोकगीत' का अर्थ नहीं ही हो सकता है, किन्तु 'ग्रामगीत' तो केवल ग्राम में ही जन्य होते हैं। 'ग्रामगीत' के सम्बन्ध में विमललिखित परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

१ 'ग्रामगीत आमतौर सम्पत्ता के क्षेत्र (भूमि) हैं।'

—द्वाराप्रकाश शिवेदी

२ 'ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं।'

३ 'ग्रामगीत छुटे होते हैं और रचनाकाल की दृष्टि से आधुनिक भी हो सकते हैं।'

—दृष्यानन्दगुप्त

१ 'पृथ्वीसपत्नी लोकगीतों का परिचय' की भूमिका पृष्ठ २

२ कविता-कौमुदी २ की भाग ग्रामगीतों का परिचय, पृष्ठ १

३ 'ग्राम लोक-साहित्य का अध्ययन', पृष्ठ ७२

५ 'ग्रामगीत छोट्टा ही नहीं बड़ा भी हो सकता है ।'

—डॉ० धर्मेन्द्र,

परिभाषाओं की यह सीखतान कस्तु के चित्र को खेंकारने में कम सहायक होती है। परिवर्तन का प्रमाण निश्चित रूप से नगर और ग्राम की सम्बन्धता एवं उनके सम्बन्ध पर पड़ता है। अछूत लोक-साहित्य और ग्राम साहित्य की स्थिति काल-क्रमानुसार बदलती रहती है। मानव-सम्बन्धता के कृषि-अवस्था में आते ही ग्रामों और नगरों की सम्बन्धता में भेद उपस्थित हुए, मद्यपि दोनों का सम्बन्ध बराबर बना रहा और दोनों एक-दूसरे को प्रभावित भी करती रहीं। नगर में ग्राम की अपेक्षा किञ्चित् परिष्कृत बन्धि बनने लगी। परिवार की यह स्थिति जब काफी लम्बी ठठ गई तो ग्राम और नगर-संस्कृति का भेद स्पष्ट दौलने लगा। इससे ग्रामसंस्कृति (सर्वसाधारण) और संस्कृति (परिष्कृत बन) में दो वर्ग प्रगट हुए। लोक-साहित्य इसी समय का मौखिक परम्परागत साहित्य है जो सामाजिक स्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। श्रुत्येद की श्रुचार्य किसी समय मौखिक थी। लिपिबद्ध होकर वे इस मौखिक परम्परा से छूट गईं। संस्कृत, पाली, अपभ्रंश आदि का अपभ्रंश साहित्य परिष्कृत, बन्धि-सम्पन्न बन के हाथ पड़कर लिपिबद्ध हुआ और इस प्रकार लोक-परम्परा के प्रवाह से एक ओर जाकर लिपिबद्ध होकर रुक गया। तत्कालीन स्थिति में वही लोक-साहित्य था, आज नहीं। लोकगीत लोक-साहित्य का ही गीत-यजन अंग है जिसका उद्भव नगर और ग्राम के संयुक्त साधारण-जन के मध्य होता है। वही वर्ग 'लोक' है। किसी अर्थों में लोकोन्मुखी प्रकृति का संस्कृत बन भी इस 'लोक' का अंग बन जाता है। अतः ग्रामगीत इस दृष्टि से लोकगीत के पूरक ही हैं। एक 'ग्रामगीत' 'लोकगीत' हो सकता है, किन्तु 'लोकगीत' 'ग्रामगीत' नहीं हो सकता। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में कहीं-कहीं 'जनगीत' शब्द का प्रयोग लोकगीत के अर्थ में किया जाता है। किन्तु 'जनगीत' विविध वर्ग के गीत का श्लेष है। लोकगीत जिस प्रकार

लोक-साहित्य का अंग है, उसी प्रकार जनगीत भी जन-साहित्य के अन्तर्गत है। जन-साहित्य की व्याख्या करते हुए भी नामवरसिंह ने लिखा है—  
 “जन-साहित्य औद्योगिक क्रांति से उत्पन्न समाज-व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है। इसलिए जन-साहित्य लोक-साहित्य से इसी अर्थ में भिन्न है कि लोक-साहित्य वहाँ जनता के लिए जनता ही द्वारा रचित साहित्य है, वहाँ जन-साहित्य जनता के लिए व्यक्ति द्वारा रचित साहित्य है।”<sup>१</sup> यही व्याख्या जनगीत और लोकगीत पर लागू होती है।

श्री नामवरसिंह ने अपनी व्याख्या में यह स्पष्ट बताया है कि लोक-साहित्य का एकमात्र लोक-समाज के मातृ की अभिमुखता का माध्यम-मात्र है। उसका व्यक्तित्व लोक-मातृ में विद्यमान होकर लोक-स्वरूपी हो जाता है। जन-साहित्य के एकमात्र का व्यक्तित्व अपना वैशिष्ट्य नहीं खोता। उसका साहित्य लोक-साहित्य की तरह मौलिक नहीं होता बल्कि प्रेस द्वारा मुद्रित और प्रकाशित होता है। संक्षेप में, ‘जन-साहित्य’ विद्यमान व्यक्ति द्वारा रचा हुआ वह साहित्य है जो सह-संवेदन के अन्वयपूर्ण सामान्य जन के लिए अभिमुखित होता है।”<sup>२</sup> दुहराने की आवश्यकता नहीं कि वही मेर ‘लोकगीत’ और ‘जनगीत’ पर पठित होता है।

लोकगीत का सुबन संगीत के माध्यम से खोलेन्द्रक होकर परम्परा में धर्मिलित होने के अन्त में व्यक्ति और समष्टि के मेल को ब्यक्त कर देता है। किसी व्यक्ति-विरोध द्वारा निर्मित बोर गीत जन-मानस को अभ्युत्थित कर उसके स्वप्न के स्वप्न से जगाने लगे और आकाशवाणी में उसी मूर्ति अथवा बोधे परिचरित के साथ बंधित रहे तथा निरन्तर प्रयोग में आता रहे तो वह गीत ‘लोकगीत’ ही कहलाएगा। उसे ‘लोकगीत’ की संज्ञा इतिहास और प्रयोग के तद्वारे प्राप्त होगी। भूल में बोर गीत लोकगीत नहीं कहा जायगा। परिचरित-रत समाज में आनुसंगिक अथवा औरपरिक

१ अथर्व प्रौढामिक (अंक १) पृष्ठ १३ १४

२ जनसू (अंक दो), पृष्ठ १४

मूल्य पाकर विरोध संस्कृति की दृष्टिमें ही वह लोकगीत बनता है। प्रायः गायक अपनी गीत-निर्माता के साथ कर्म-रती समाज होता है। समाज की प्रतिक्रिया गायक अपनी गीत-निर्माता पर होती है। यह समाज प्राप्त अपनी मगर कहीं का भी हो सकता है। यदि व्यक्ति-प्रसूत कोई गीत समाज के माथों को आन्दोलित कर टिक गया तो अतान्तर में वही लोक-गीत होगा, इसमें सन्देह नहीं।

अतः, 'लोकगीत' और 'जनगीत' शब्दों का वह पारस्परिक भेद लोक-साहित्य के प्रति बढ़ती हुई रूचि को देखते हुए प्पान देने योग्य है।

## लोक-मानस की त्रिधाभिव्यक्ति

गीत मनोमात्रों की अभिव्यक्ति का यह माध्यम है, जिसमें संगीत का अस्तित्व पुनः एक रूप में विहित होता है। 'लोक' से सम्बन्धित होते ही कतची व्यक्तिपरक महत्ता सामूहिक तत्त्वों के अतुल्य रूप धारण करते हैं। अस्तित्व का जो आभास कला-गीतों में मिलना सहज और अनिवार्य है, वैसा लोक-गीतों में नहीं, क्योंकि लोकगीत व्यक्ति-मौल्य नहीं हैं उनमें मानव के समूहगत भावों की अभिव्यक्ति होती है।

### लोकगीत का निर्माण

इसी कारणों के आधार पर लोकगीत-विशेषज्ञों का मत है कि उनका निर्माण कोई व्यक्ति नहीं, जन-समूह करता है। यह प्रत्यक्ष विचार और विषय भी रहा है। प्रोफेसर थियरिच और कैम्स ग्रिम भी राय तो यही है कि लोकगीतों का निमात्यकर्ता जन-समूह होता है। कृतत्व-शास्त्र एवं समाज विज्ञान के विद्वान्ताँ ने इस मत को अनेक प्रमाणाँ से पुष्ट किया है। आदिम मानव-समाज के अध्येता यह मानते हैं कि मानव ने अपने मूल भावों की अभिव्यक्ति तब ही सामूहिक गीतों में की है। यह अस्वप्न ऐसी थी जब कि जन की समस्त निम्नवी मादनाएँ एक होकर गीत-रूपी अभिव्यक्तता के सागर की ओर दौड़ी होगी, यह अनुभव नहीं। बाइबेल का

मत है कि आदिम अवस्था में मानव की सामाजिक चेतना अपने साधारण रूप में थी, जो क्रमशः प्रकृति के साथ संपर्क करते हुए गहरी होती गई। मानव और प्रकृति का यह संपर्क सामूहिक चेतना को बढ़ाता गया। प्रकृति के विद्यमान रूप से मानव मयमीत हुआ और किसी पशु को मानने पर अपनी विषय में प्रकुश्लित भी। प्रकृति से उठकर तान्त्रिक उठके विकास के आरम्भ से बना हुआ है। पशु-पक्षियों की किलकारियों और शब्दों का समयत उच्चारण मूल की विभिन्न अवस्थाओं के अनुरूप घटित होता रहा। अतः अभिव्यक्ति के क्षेत्र में मानव के वे तत्कालीन मनोभाव, अपने अनगढ़ रूप में, शारीरिक मुद्राओं के साथ गीत, संगीत और नृत्य के जन्म की कक्षाएँ बने।

लोकगीतों के निर्माण का सम्बन्ध शब्दों की उत्पत्ति के साथ है। किसी व्यक्ति के गीतबद्ध मनोभाव यदि जनमयों के अनुरूप हुए, तो वह सब ही उन्हें अपनाकर उनमें अपने स्वभाव और सुविधानुसार परिवर्तन कर लेता है। गीत का यही संस्कार लोकगीत है।

### लोकगीत एवं लोक-संगीत

लोकगीतों के साथ लोक-संगीत का उल्लेख आवश्यक है। एक पारंपारिक विद्वान् के अनुसार कालान्तर में सहज संगीत (Spontaneous music) ही लोकगीत कहलाया। लोकगीत के लिए अंग्रेजी शब्द 'फोल्क-संग' (जर्मन शब्द volkslied से उत्पत्ति) है, जिसके लिए कहा गया है कि वह संगीत के क्षेत्र में सच्चाई और हृदय के माते अपना विशेष महत्त्व रखता है।<sup>1</sup> इसमें दो मत नहीं कि लोक-संगीत लोकगीत के अभाव में केवल

1 Folksong, a rather awkward translation of German word Volkslied but nevertheless a word which stands for a very definite fact in the realm of music.

—एम्साइकलोपीडिया मिरानिका (३) १४ वें संस्करण (१९९३-९५) पृष्ठ ३३०



दुन्दों का शून्य अवस्था आविष्कार न होने पर भी कल्पित समय में सुनिश्चि-  
 त बनक हुए। कल्पान्तर और स्वर्गों का शून्य शब्दों के सार्थक प्रयोगों के साथ  
 मानव समझने लगा। यह मानव की यह अवस्था थी, जब अपने पशुओं  
 के लिए खपगाई की लोभ में वह एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर बढ़  
 पड़ा था। कृषि का ज्ञान होने पर अपनी फल की बुद्धि के विचार से  
 उसकी पुस्तककृति को पहली बार खोद पहुँची। उसके कदम बड़े। गोंब  
 बसे और तभी उसके गीत और संगीत का रूप प्रकट हुआ जिसे हम मन्म-गीत  
 अथवा मन्म-संगीत कहते हैं। अतः अपनी आदिम अवस्था से निकलकर जब  
 मनुष्य पशुरूपेण कृषि-अवस्था का मनुष्य कहलाने योग्य हुआ अथवा जब  
 उसने एक विशेष प्रकार की संस्कृति और बुद्धि का उदय हुआ, तभी गीत  
 और संगीत के स्वरूप कुछ निश्चित हो पाये। प्राचीन भारतीय वाद्यों में  
 गायत्री का उल्लेख हमें मिलता है, जो बहुत स्पष्टिष्ठ सामाजिक अवस्था  
 के लक्षण हैं। ये गायत्री गीत अथवा पद्य ही हैं, जो श्रुत्येव में एक निम्न  
 साहित्य की घोषक मी हैं। साम्राज्य प्रन्थों के अनुसार ये गायत्री मन्म-सुबिध  
 हैं, जिसका उद्देश्य विशेषतः किसी महान् व्यक्ति के उत्कर्षों का बखान  
 करना रहा है। शतपथ साम्राज्य में अथर्ववेद के रूप में, महामातृ में तथा  
 अन्य संस्कृत प्राकृत प्रन्थों में गायत्री गाने की परम्परात्मक प्रथा के अनेक  
 उदाहरण उपलब्ध हैं। अथर्ववेद, पाली आदि में भी यीर्तों की यह परम्परा  
 और मेव पद्यितवित विद्यमान रही है। अब, जो वैदिक युग में आर्यों  
 परम धर्म या, संगीत-शून्य कभी न रहा। वह वही उगोत या जो  
 अपने आदिम रूप से क्रमशः विकसित होता हुआ सामुदायिक गान के रूप  
 में प्रतिष्ठित हुआ। यद्यपि प्रन्थों में उसे आदिम ही माना गया है, तथापि  
 वह लौकिक संगीत के अनुकर रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन प्रन्थों  
 में सामूहिक गान, नृत्य, उल्लाप आदि का उल्लेख यदि लौकिक अथवा  
 लोक-संगीत की ओर संकेत नहीं करते, तो उन्हें आर्यपत्तिक मी नहीं कहा  
 जा सकता। अतः लौकिक और संगीत उदने ही उत्पन्न हैं, जितने खोंद  
 और लक्षण।



## लोकगीतों के सामान्य लक्षण

संसार के मिन-मिन बेरों में बसने वाले मानव अपने पर्य-उत्सव के अकर पर गाते और नाचते हैं। उनकी माफ़ें अपनी होती हैं, जिन्हें पूर्वकों से सीखकर वे बराबर प्रयुक्त करते रहते हैं और उनमें एक प्रकार की प्राम्नी कृता होने के कारण वे अपनी स्वाम्भिक सचाई और लोकम्बुता की म्भिक की दृष्टि से ह्कस्यशी होती हैं। इस प्रकार माफ़ें गीतों की क्यौटी बन जाती है।

गीतों में पारं जाने वाली एक सामान्य लक्षणकृता उनकी बूली शिरो फता है और अकिंश रूप से इस लक्षणकृता में निहित संगीत की बहुत कुछ मिला-जुला होकर परम्परापरित नहीं होता।

लोकगीत अपने आप में एक प्रबल होते हैं। अम्बेताओं का कचन है कि प्राय दुनिया के सभी लोकगीतों की बुनें भारतीय पुनी से मिलती हैं तथा उनके परिवर्तित रूप भी मिलते हैं। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत के म्भ में गीत 'लवकमावरायलताकम्भ' बल्तु है, जितमें एक म्भिक और समूह दोनों का ही माने जाने वाले गीत सम्मिकित हैं। पारंपर्य संगीतकों का अनुमान है कि लोकगीत केवल अपनी सामूहिक दृष्टि के कारण ही १५वीं शताब्दी के परचात् निके रह सके। किन्तु भारतीय गीतों में पार जाने वाली स्थिति से यह समोचीन प्रतीत नहीं होता। अलग अलग हिस्से के लोकगीतों में मिन-मिन लक्षण पाए जाते हैं, जिनके द्वारा हम उनके स्थापित अथवा अस्थापित की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किन्ती पारंपर्य लेखक न दुनिया के लोकगीतों का स्वम्भ बतलते हुए लिखा है—'कांत के गीत या ती सुन्दर (स्यदु) होते हैं या मारुचीय कमकी गीत बोम्भिल एवं हृदय-स्यशी, सामान्य यूपरीय गीत गेब, पुनगुनाने योग्य, पुद एवं अकम्भद, क्की गीत उदात्त और अनगद स्वेनी मन्द् और दृजित तथा हिक् गीत आप्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी-जीमो गीत रिमघस, मुन्द एवं गहर धार्मिक हाते हैं।"

### सोकगीत और नृत्य

संगीत के साथ नृत्य को हम जुला नहीं सकते। वहाँ एक लोच-नृत्यों का प्रत्यक्ष है वे गीतों से जुड़े हुए हैं। दोनों ही आदिम मानव की प्राथम्य अभि-  
 व्यक्तियों रही हैं। गीत में संगीत मात्र-प्रधान शक्ति अभिव्यक्ति का रूप  
 प्राप्त करता है और नृत्य में मानव अभिव्यक्ति के हेतु प्राणिक मुद्राओं  
 के रूप में प्रकट होती हैं। एक मूलतः रूप-प्रधान है और दूसरा वास्तु-प्रधान।  
 नृत्य काल के बिना सम्भव नहीं, जैसे ही नीतियों का भी लय के अभाव में सम्भव  
 होना असम्भव है। गीत में एक धुन होती है किन्तु धुन के माध्यम से किसी  
 एक बड़ी को एक ही ढंग से अधिक समक एक गाया जाना प्रायः पसन्द  
 नहीं किया जाता। यह आहृति-पद्धति कहा जाती है जो प्राचीन गीतों में  
 विशेष रूप से पाई जाती है। प्रक (Refrain) भी आहृति ही है, किन्तु  
 वह किसी विशेष पंक्ति की होती है। आहृति का प्रयोग 'बोलामारु' बेली  
 गीत-कथा अथवा 'हीड' जैसे तुर्क लोच-नृत्य में विशेष परिलक्षित होता  
 है। जो गीत नृत्य से सम्बन्धित होकर प्रकट हैं, उनमें आहृति अथवा  
 कदाचित् सिद्ध होती है। जैसे तो कई गीत ऐसे होते हैं, किन्तु मिन-मिन  
 नृत्यों में गाना का लक्ष्य है, पर काल से सम्बन्धित होते ही कभी लय भी  
 निर्दिष्ट हो जाती है। वस्तुतः लोचगीत और लोच-नृत्य में अलग अलग  
 गुण होने पर भी उनका आन्तरिक सम्बन्ध होता है।

गीत और नृत्य में दोनों संघीवात्मक अभिव्यक्तियों का भी भारतीय  
 एवं परिपक्वी लोच-संगीत में समान रूप से विहित हैं। कथावाची कथा,  
 रिचा, लगने, लोहपत्र, हींग, मारवाड़ी भूमर वा मेवाड़ी उलहाटी,  
 मिथिला के भूमी अथवा मालवा के खड़े या बाड़े नृत्य भीलों के घोली,  
 कुरपासी आदि गीतों से सम्बन्धित हैं। परिचय का तो आधुनिक संगीत  
 इतने बड़ा नहीं। 'बैच सूट' (Bach Suite) आदि नृत्य का और 'बैच  
 फ्यूग' (Bach Fugue) गीतों का ही विद्यमान रूप है। बैचोवन के गीतों  
 की मन्त्र यानि लोचगीतों से संबंधित है और 'सेरो' (Scherro) के पीछे नृत्य  
 का प्रभाव स्पष्ट है। इस प्रकार स्वीडिश-की के 'चर्र चॉर सिंग' का प्रारम्भ

## लोकगीतों के सामान्य लक्षण

संसार के मिन-मिन देशों में बसने वाले मानव अपने पूर्व-उत्सव के अन्त पर गते और नाचते हैं। उनकी मायाएँ अपनी होती हैं, जिन्हें पूर्वजों से सीखाकर वे बचपन प्रशुद्ध करते रहते हैं और उनमें एक प्रकार की प्रामोदता होने के कारण वे अपनी स्वाभाविक सचाई और लोकस्वरूपा अभिव्यक्ति की दृष्टि से हृदयस्पर्शी होती हैं। इस प्रकार मायाएँ गीतों की अमोही बन जाती हैं।

गीतों में पाए जाने वाली एक सामान्य लक्षणा उनकी दृष्टि विरोधता है और अविच्छिन्न रूप से इस लक्षणा में विहित संगीत भी बहुत-कुछ मिला हुआ होकर परम्परापरिचित नहीं होता।

लोकगीत अपने आप में सत्य प्रधान होते हैं। अन्वेषकों का कथन है कि प्रायः दुनिया के सभी लोकगीतों की पुर्न भारतीय पुर्न से मिलती हैं तथा उनके परिवर्तित रूप भी मिलते हैं। राष्ट्रीय संगीत के उदाहरणों के मध्य में गीत 'लवङ्गमावशकलाधन्य कलु है जिसमें एक व्यक्ति और समूह दोनों हाथ ही गाने जाने वाले गीत सम्मिलित हैं। पारंपरिक संगीत उन्हीं का अनुमान है कि लोकगीत केवल अपनी सामूहिक दृष्टि के कारण ही १५वीं शताब्दी के पश्चात् चिंके रह सके। किन्तु भारतीय गीतों में पाए जाने वाली स्थिति से यह समोचित प्रतीत नहीं होता। अत्यन्त असाहसिक दृष्टि के लोकगीतों में मिन-मिन लक्षण पाए जाते हैं, जिनके हाथ हम उनके स्वाभाविक अथवा अस्वाभाविक की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किसी पारंपरिक लेखक ने दुनिया के लोकगीतों का लक्षण कताव हुए मिला है—“अर्थ के गीत या तो सुन्दर (स्वादु) होते हैं या बादवीन, बर्मेनी गीत रोमिन्त एवं हृदय-स्पर्शी, सामान्य यूरोपीय गीत गेव, पुनपुनाने बोम्ब, पुन एवं अस्मन्त, कर्ना गीत उराल और अवाङ्ग, स्पेनी मन्त्र और स्वयिस तथा हिन्दू गीत आध्यात्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी-बीसो गीत विलक्षण, सुन्दर एवं गहरे धार्मिक होते हैं।”

### सोफगीत और नृत्य

संगीत के साथ नृत्य को हम मुझा नहीं सकते। जहाँ एक सोफ-नृत्यों का प्रश्न है वे गीतों से जुड़े हुए हैं। रोना ही आदिम मानव की प्रथम अभिम्यक्तियों रही हैं। गीत में संगीत मात्र प्रथम शब्दिक अभिम्यक्ति का रूप धारण करता है और नृत्य में मानवार्थ अभिम्यक्ति के हेतु शारीरिक मुद्राओं के रूप में प्रकट होती हैं। एक मूलतः लक्ष-प्रधान है और दूसरा ताल-प्रधान। नृत्य ताल के बिना सम्भव नहीं जैसे ही गीतों का भी शब्द के अभाव में सम्भव होना असम्भव है। गीत में एक धुन होती है, किन्तु धुन के माध्यम से किसी एक कड़ी की एक ही टंग से अधिक समय तक गाया जाया प्रायः पसन्द नहीं किया जाता। यह आधुनिक-पद्धति कहलाती है, जो प्राचीन गीतों में विशेष रूप से पाई जाती है। भुवक (Refrain) भी आधुनिक ही है, किन्तु वह किसी विशेष पंक्ति की होती है। आधुनिक का प्रयोग 'बोलामारु' जैसी गीत-रचना अथवा हीड' जैसे सुन्दर सोफ-धम्म में विशेष परिलक्षित होता है। जो गीत नृत्य से सम्बन्धित होकर चलते हैं, उन्हें आधुनिक आधुनिक तहायक सिद्ध होती है। जैसे तो कई गीत ऐसे होते हैं, जिन्हें मिन मिन धुनों में गाया जा सकता है, पर ताल से सम्बन्धित होते ही उनकी शब्द भी निश्चित हो जाती है। बल्लुतः सोफगीत और सोफ-नृत्य में अलग अलग ध्य होने पर भी उनका आन्तरिक सम्बन्ध होता है।

गीत और नृत्य में दोनों संगीतज्ञानक अभिम्यक्तियों का ही भारतीय एवं परिचमो सोफ-संगीत में समान रूप से निहित हैं। चन्ताली कर्मा, रिचा, लगने, सोदपद, दौंग, मारबाड़ी भूमर वा मेवाड़ी एतबापी, मिथिला के झरनी अथवा मातवा के लड़े या धाड़े धृत्य, भीलों के बोली, बुइपासी आदि गीतों से सम्बन्धित हैं। परिचम का ही आधुनिक संगीत रहस्ये बना नहीं। 'बैच सूट' (Bach Suite) आदि नृत्य का और 'बैच फ्यूग' (Bach Fugue) गीतों का ही विशिष्ट रूप है। बेचोवन के गीतों की मन्त्र पदों सोफगीतों से संबंधित है और 'शेरो (Scherro) के पीछे नृत्य का प्रमाण स्पष्ट है। इस प्रकार स्थापित-की के 'पार्ट ऑफ स्ट्रिंग' का प्रारम्भ

मो एक गीत-रस पर आधारित है। वास्तव में जिसे पश्चिम में 'सिम्फो-निक' संगीत कहा जाता है, उसका अधिकांश मूल में नृत्य और संगीत के संयोग का ही प्रतिफल है।

### अविन्य अमिच्छकित

प्रोफेसर ब्राह्मरुद्र इसे स्पष्टता स्वीकार नहीं करते कि लोकगीत की उत्पत्ति संगीत और नृत्य से होती है, किन्तु जब हम अतिप्रायः अंग्रेजी शब्दों की उत्पत्ति-विषयक खोज करते हैं, तो इसमें हमें तन्हेह नहीं रहता। उदाहरणार्थ अंग्रेजी के 'बैलेट' (Ballad) शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच शब्द 'बैलेर' (Ballare) से हुई है, जिसका तात्पर्य है नृत्य। ऐसा प्रतीत होता है कि सामूहिक नृत्यों में ही 'बैलेट' लोकगीत की उत्पत्ति निहित है और संगीत इससे निरन्तर ही अलग नहीं। पर सामूहिकता के ठीक विपरीत 'इम्प्रो-विजेशन' के सिद्धान्त के प्रयेवाओं का मत है कि लोकगीत अविन्य अमिच्छकित है। किसी अवसर विशेष पर उत्साह और हर्ष में हुआ हुआ जन-समुदाय किसी एक की प्रेरणा से अविन्य रूप से गीत-रचना करने लगता है।

### विधामिच्छकित

हो हो, गीत, संगीत और नृत्य तीनों ही लोक-नाट्य की पूर्ण अमिच्छकितियाँ हैं तीनों ही एक-दूसरे से पूर्ण नहीं की जा सकती। यहाँ हर्षोत्साह का सामूहिक रूप प्रकट होता है, यहाँ तीनों ही संयुक्त होकर व्यक्त होती हैं। संक्षेप में यह हम लोक-नाट्य की 'विधामिच्छकित' हैं, तो प्रत्युत्पन्न व होया।

## लोकगीतों में रग-वैचित्र्य

भारतीय काम्य एवं साहित्य में रंगों का उल्लेख प्रायः सौन्दर्य-सृष्टि के निमित्त एवं विविध वातावरण के संरक्षण विषय में आसंभारिक योजना के उद्देश्य से किया गया है। किन्तु रंगों का उल्लेख हमारे पूर्ववर्ती परिष्कृत साहित्य में उपलब्ध है वे आदिम कृषियों के आकर्षण से उत्पन्न होते हुए हैं। उनमें कमरु नई-नई रंगों (शहस) और मूस रंगों के आतिरिक्त तन्मिथित प्रभाव उत्पन्न होता गया है। यही कारण है कि लोक-साहित्य में प्रयुक्त रंगों में वहाँ मौलिकता अवयवत्व और अस्वीकार्यता अवशिष्ट है वहाँ परिष्कृत साहित्य में अभिव्यक्तवर्णीय रंगों को पर्याप्त प्रभाव करने वाले रंग विषयक विचार, वैचित्र्य, कृता और प्रभाव मिलते हैं। किन्तु रंग, प्वनि, मन्थ और स्पर्शयुक्त चित्रों की भी भारतीय साहित्य में कमी नहीं है। उन चित्रों में प्रकृति का प्रतिबिम्ब उन्हीं उपकरणों से उद्भूत हुआ है जो लोक-साहित्य में अपनी स्वाभाविक अनलंकृत और लोकेतिक योजना द्वारा प्रकट होते हैं।

प्रकृति से अपनाये गए रंग सदैव ही तन्मय अतन्मय सभी प्रकार के मानव मान को आकर्षित करते रहे हैं। लाल, हरित, नील, पीत, सफ़ेद, श्याम आदि इसी प्रकार के रंग हैं। मन्थ, प्वनि और स्पर्श के उर्वरों से पूरित वातावरण प्रस्तुत करने वाले शक्ति-उपकरण तद्ब ही रंगों का मास

उत्पन्न करते हैं। किन्तु कहीं में रंगों का अत्यन्त अपरोक्ष रीति से भी होता है।

रंग प्रकृति के अन्तर्गत हैं। दार्शनिक दृष्टि से संस्पर्शवादियों और वेदान्तियों के लिए यह गोचर विषय है, किन्तु प्रकृति की अनुकम्पा से उत्पन्न होने वाले बिल तोलाह पदाद्यों में शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध की मूल पंचतन्मात्राएँ हैं, तबमें बस्तु से रंगों का प्रधान सम्बन्ध है। यद्यपि यह दृष्टि का विषय है तथापि अन्ध, स्पर्श और गन्ध से भी उत्कृष्ट आनन्द स्वाभाविक है। अतः रंग-विशेषण के अभाव में भी आनन्द सम्बन्धित उपकरणों द्वारा निश्चित रंगमात्र हो जाता है। बिल तरह कुछ वस्तुओं के अत्यन्त-मात्र से पूर्ण प्रतिबिम्ब बन जाता है, ठीकी प्रकार कृत्रिम सांकेतिक कर्मों से (बिलके प्रति पूर्णापर सम्बन्ध होता है) रूप और रंग का प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। प्रकृति-वर्चन में मेघों की कला से हस्तचतुषु के रंग वृक्षों की हरिताम्रा, सरिताओं का फेनिल बल, पक्षियों के विविध रूप आदि आनन्द प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार अनेक वस्तुओं में रंगों की सत्ता है जो भावनाओं को सुगो से अनुभवित किये हुए है।

### सौन्दर्य एवं रंग

लोकजीवियों में रंगों का यद्यपि प्रत्यक्ष अत्यन्त है तथापि अप्रत्यक्ष शब्द मोक्षना की भी तबमें कमी नहीं जो विकसित जातियों के पीछे में उपलब्ध है। सौन्दर्य की कर्षा करते हुए कला-मर्मज्ञ इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सौन्दर्य हमारे सद्यस मात्र में निर्माण होने वाले विभिन्न कलु-तत्त्वों का एकत्रण है। अतएव अप्रत्यक्ष शब्द-मोक्षना भी तबत एकीकरण में योग प्रदान करती है। किन्तु साधारण स्थिति में सौन्दर्य केवल आनन्द की वस्तु है। यह दृष्टि के माध्यम से मन को तृप्ति और प्रेरणा देता है। चित्रकला में देखाएँ, वस्तु को रूप देती हैं और रंग तब रूप के सौन्दर्य को उभारते हैं। बालकों द्वारा बनाए जाने वाले चित्रों को देखने से अत्यन्त होगा कि तबमें देहों का रंग हट, आकाश का नीला, धूप का लाल और पहाड़ों का

काला होता है। रंगों के प्रयोग की यह वैज्ञानिक वृत्ति है। लोकगीतों में यही वृत्ति कार्य करती है। उनमें भी हरे पेड़, नीले आसमान और 'रंगे' (काला) सूर्य की कल्पना है। लोकगीतों के रंग स्थिर हैं—उनमें गत्या ध्वन्या का अभाव है। वस्तुतः लोकगीतों में रंगों के प्रति सांकेतिक निर्वाच मिलता है जो संस्कार रूप में जनमानस की रूचि को प्रभावित करने की क्षमता रखता है।

### रंगों की अवस्था

हर्बर्ट रीड ने निम्नकाल में प्रयुक्त होने वाले रंगों की तीन अवस्थाएँ बताई हैं। प्रथमावस्था को 'हेपटिडिक', द्वितीय को 'हाउमोनिक' और तृतीय को 'प्युअर' कहा है। 'हेपटिडिक' अवस्था अत्यन्त प्राचीन है जिसमें रंगों का प्रयोग संकेतार्थी रहा है। प्रागैतिहासिक एवं पूर्व प्रागैतिहासिक पित्रों में यह अवस्था विद्यमान है। वास्तव्य के चित्र भी इसी अवस्था के अन्तर्गत आते हैं। मध्यकालीन काल में रंगों के प्रयोग विषय में किंचित् परिवर्तन हुए। प्रयोग निश्चित विषयों में बँचे रहे। रुढ़ हो जाने से विरोध वस्तुओं के विरोध रंग अमर्या निर्धारित हो गए—मूल में पाहे के यथार्थ न ही। रीड का कथन है कि यह 'हेपटिडिक' प्रयोगावस्था १५वीं शताब्दी तक चलती रही। स्वीकार करना होगा कि लोकगीतों में यही अवस्था हमें मिलती है। संसार के किसी भी भाग के गीत क्यों न हों, यह अवस्था उनमें निश्चित रूप से विद्यमान है। लोकगीतों की जड़ें मूल काल में बनी हैं, इतिहास उनके पित्रास, रुढ़ प्रयोग, शैली और भाषागत संरक्षण यही हैं। उनमें परम्परा का पोषण सर्वोपरि है। जहाँ तक रंगों का प्रश्न है, लोकगीतों में पहले से पहले आते हुए रंगों में परिवर्तन कम हुए हैं। 'हाउमोनिक' अवस्था के रंगों में द्वाय-प्रकार (साइड एन्ड रोड्स) का मेल हुआ और 'प्युअर' में रंगों का मुख्य स्वरूपगत आकर्षण की दृष्टि से अर्थ यथा जिसमें रूपगत पृथक्ता एवं जीवन के महत्त्व की दृष्टि हुए। लोक गीतों में 'हाउमोनिक' अवस्था कहीं-कहीं मध्यकालीन प्रयोगों के तहारे



झाई है 'पूअर' अथवा की उनमें किंचित् सम्मानना भी नहीं है। वह परिष्कृत रसि के घाटक साहित्य में खोबी का सफ़ती है।

साध-साहित्य के अध्ययन-विषय को देखते हुए रंगों की दृष्टि से भारतीय लोकगीतों की परख करना अधिचार्य प्रतीत होता है। प्रागैतिहासिक मानव के दृष्ट चित्रों ने प्रागैतिहासिक कला के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अन्वेषणों का द्वार खोल दिया है। पारंपार्य विद्वानों ने उपलब्ध कला-चित्रों से आदिम वृत्तियों का बड़ा सूक्ष्म अध्ययन किया है। प्रागैतिहासिक मानव की रसि, उसके प्रिय रंग, प्रयोग विधि, विविध गति आकर्षण आदि का विस्तारपूर्वक अध्ययन हमारे सम्मुख है। भिन्न स्वयि स्थिर प्रमाण है, किन्तु इस दृष्टि से लोकगीतों का महत्त्व भी कम नहीं। लोकगीतों में रसि को अत्यन्त, रंगों को प्रथम, मानवीय एकाद्यों की अभिव्यक्ति, अन्व-विरास, रस रसि आदि में कतिपय आदिम वृत्तियों के अवशेष मिले हैं। योंही में जैसे क्रमशः परिवर्तन होते जाते हैं, किन्तु भाषा में शब्दों की अपेक्षा परिवर्तन कम होते हैं। अन्व-संगीत-तन्त्र भी आदिम अवशेषों का संवाहक है। लम्बी धुनें, पशुओं की चरियों की लक्ष्य और विरल शब्द-योजना प्राचीन प्रमाण के चेतक हैं। लोकगीतों के रंग भी इस दृष्टि से अपरिवर्तनशील हैं। उनमें भी आदिम रसि का चेतक प्रमाण लक्षित होते हैं। कतिपय रंग रस होकर उठी अथवा में प्रयुक्त होते आ रहे हैं। कर्नाटिक अथवा पञ्चम, साहचर्य, धर्म-अन्व-विरास और मनोबैज्ञानिक रोमान से सम्बन्ध है।

प्रकृति की लुब्धी हुई प्रकृति सब ही लोक-मानव के अध्ययन की सामग्री रही है। विभिन्न कलाओं के रंग, अन्व, और प्रमाण लोक-गायकों ने सीधे-सीधे अपना लिए। उन्हीं के साहचर्य से उन्हींने एक-दूसरे के पूरक रंगों और मूल रंगों के प्रति अपनी रसि दृष्ट की। लोकगीतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लोक-रसि रंगों के बाह्य से ही अधि रस है अथः उन्हीं सीमाएँ विरिषत हैं।

प्राची रंग

गायत्री लोकाती में कुछ रग स्वामी हैं। सात रंग ही सींचिए। सात के अन्य मेर गुलाबी, बालूनी महीली, महाबरी, मेहरिया, किन्तुली, रखा, हंगसाव (हिम्बू), आदि कल्पपरक रग के चोतक हैं। ये मेर लोकाती में बोलन की उपयोगी बस्तुओं से ही साहस्य की गूमि पर अपनाये गए हैं। सात रग अन्य सभी रंगों की अपेक्षा सभ्य किन्तु असभ्य सभी वासिनी को विशेष प्रिय है। सभी युगों में यह परम्परा चिया जाता रहा है, क्योंकि यह अटकीला, प्रत्यादायी, उठेबक है, और पृथ, बालक, पुत्रक, बन्धन, नागरिक, आदि सभी प्रकार के, सभी आयुओं के व्यक्तियों के लिए स्वभावानुसृत है। सात रगों से पशुओं को उत्तमि चिया जाता है। सात रंग बलि का चोतक है। किन्हीं अंशों में एक से साहस्य होने के कारण यह मानव की मूल वृत्तियों को उत्कृष्ट प्रभावित करता है। आदिम अवस्था से ही सात रंग मन को आकर्षित करता रहा है। मोरपुरी, मालती, राजस्वामी, मैथिली, कुम्भदेवी, दुर्गासमाधी, पञ्चारी, कुम्भेरी, अक्षयी, विहायी, महापट्टी, आदि सभी मायवीय मायाओं के गीतों में सात और उठकी कुछ अन्य गतें एवं अक्षयीनापन निहित है।

मोरपुरी गीतों में प्रसन्न के लम्बे बाप अम्मिल से यह-स्वामी को सात पाद को बाज्रम साने को आज्ञा देती है।<sup>१</sup> बुद्धि पुत्रहीना अम्मिली को हठ बाठ का लेट है कि वह बीकन में कभी सात और पीला कन्न पहनकर पति के साम बेटी पर नहीं बैठी,<sup>२</sup> प्रियठम की अनुपस्थिति में नायिका अपनी कुनरी सात रंग में रैयने से मना करती है,<sup>३</sup> और मालती

१ उहरी से बगदिनि दुपरा आज्ञा कि बोझ बोझै अम्मिल प।

सात पाद के बाज्रम मोंगळे, पौरी लोरी उसाव प ३”

—मोरपुरी प्रामगीत, ( हि० सा० स० प० ) पृष्ठ ७३

२ “बाक पियर ना पहिराही बडक ना बहूथी हो।” बहो पृष्ठ ८२

३ ‘हम ना रैगहरीं बासी कुनरिया, पिया चिमु सवरीं अम्हार।’

—बही, पृष्ठ १७

गीतों की नायिका को युद्ध की महंगार से डर है कि कहीं उलथ ल  
 कु कुम पीका न पड़ जाय ।<sup>१</sup> प्रसन्नता को अकस्मा में प्रियतमा का  
 प्रियतम के लिए लाल पगड़ी येकती है और वित्त ही 'उठा' सुख उठी  
 होये देखती है । अकस्मानी नायिका अपने प्रियतम का मोक्षिमा मर्  
 से मरे मरनों में रँगने के लिए आतुर है ।<sup>२</sup> वह प्रियतम के संयोग के लि  
 हिंगलु बोलियाँ ( पलंग ) मझती है तथा देखी-देखाओं को लाल लियु  
 बस्त्र से सुसम्भित देखने की अभिलाषा रखती है ।<sup>३</sup> मैथिल स्त्री अपने ब  
 बाल पिछु को लहपटा हुआ लाल पटोर पहनाकर दूध मिलाने की रच  
 रखती है ( मैथिल लोकगीत, ७२ )<sup>४</sup> । एक गीत में प्रियतम स्वयं अपने  
 प्रियतमा से लाल पलंग पर मीठा करने का अपुरोप करता है ( मैथि  
 लोकगीत, ७७ )<sup>५</sup> । कुचप्रदेश की नायिका लाल बंगारी इतलिय पहन  
 नहीं चाहती कि उसके एबाबी का बिड़ला लाल है, ( आरि हिन्दी व  
 कहानियाँ और गीत, पृष्ठ १ १ ) ।<sup>६</sup> छत्तीसगढ़ी गचौरी में प्रियतमा पं  
 के अभाव में किसके लिए मैहरी रपाय, मही दुल करती है । महात्मा  
 बीकन में अनेक शुभ प्रसंगों में लाल रंग का उल्लेख है ( मण्ड

१ "बी हरा रंग पीको रंग मायी कर को कु कु कर दपो पीको ।"  
 —मा को पृष्ठ १

२ "मन्दा भरिया प् सबीसबी म्दरा सायब को रंग दे मोक्षियो ।"  
 —रा के को

३ "मेकनी अस्पामी लाल सिन्दूर सूँ चूप रही गहराय  
 लाल बंगोयो विरल सिन्दूर को बैदा बररंग आम्ब बाब ।"  
 —राज को

४ "बहरक लाल पटोर पहिनि कर आवब रे लखना ।

५ लखना चहु बनि बाधि रे पकंगिया कि हों दोहि बिहुँसब रे ।  
 पृष्ठ १२, १३

६ "लाल बंगारी महरा में वा देह" लाल मारे राजाजी का बिड़ला ।

प्रोम्पा, बाबूत आखेटोस )<sup>१</sup> । बुन्देली शोक-गाक इतरी तो सिन्दूर से मरी मौंग पर मस्त होकर गा उठते हैं—

मौंतिव मौंग मरी सेन्दूर से  
बेदा देत बहारें ।  
डौंही इती टिकी चौखट से,  
सहजह अपने हारे ।<sup>२</sup>

अपनी के गीतों में परवेश करते हुए प्रियतम अपनी प्रिया को सिन्दूर से बाँधा है ।<sup>३</sup> इत प्रकार काल रंग का अखिल अनेक प्रकार की वस्तुओं के लिए भारतीय गीतों में हुआ है । गुलाबी, कालूनी, आदि अन्य हल्की गीतों के अखिल बहुत कम प्राप्त होते हैं । मासवी गीतों में अक्सर कालूनी का अखिल मिलता है । अरमीची गीतों में गुलाबी गालों की चर्चा मौंगो-लिक स्थिति के कारण है । दक्षिणपूर्वी गीतों में तो इन हल्की रंगों का प्रायः अभाव है । गहव काल ही सर्वत्र प्राप्त है ।

हय प्रकृति का अपना रंग है, जो पीत और नील के सम्मिश्रण से तैयार होता है । पीताम्बर कृष्ण के उतपीय के रूप में भारतीय गीतों का प्रिय वस्त्र है । पीत रंग सूर्य प्रकाश की वासो बाला है और नील उदक की आभा रखता है । अतः हरे रंग में दोनों का समावेश है । राजस्थान में उक्त प्रयोग अनेक वस्तुओं को रंगत दिखाने के लिए किया गया है । 'मुझा पंसी' कृत्य हय रंग ही है जो मुझा (तोता) के पंसी की रंगत का चोटक है । मैथिल गीतों में हरे बाँव की बाँसुपे कृष्ण के अचरों के बीच

१ 'हृदन दिसते वागो बाओ तली धाक सीताबाई बाबन्दीयं शास्त्रीके दिव पाठ'

२ इतरी को बागे पृष्ठ ७

३ 'मैथ, है गये कृपवन वैख हरपवन सेन्दूर' (इमाता प्राम साहित्य पृष्ठ १११)

शोभा पाती है', हरे बॉस के मरखप कृपाये बाते हैं', हरे भुखुड और र  
 बन उल्लेखे सिध आकर्षण के विषय हैं। राबस्थान में मैबिल की जनेबा हा  
 रंग कम प्रयुक्त हुआ। फिर भी बल-देकता की पूजा के समय राबस्थानी लं  
 हरे बॉस की कृपड़ी में पनेसी का फूल रचना बाहरी है।<sup>१</sup> कुम्भरेण के  
 गीतों में 'आकल उमसे और मूंग सदैव हरे बताये यर हैं।'<sup>२</sup> हय प्रकृति  
 की रंगत लिये है। अनेक हरी बस्तुएँ जीवन में उपयोगी हैं। भारतीय  
 गीतों में साल के बाद हय रंग ही अधिक आकर्षित करने की सामर्थ्य  
 लब्धा है।

अन्व रंगों के उल्लेख बस्तु-सादर्य की दृष्टि से हुए हैं जिन पर काले  
 विचार किया जा रहा है।

### राबस्थानी रंग

रंगों की दृष्टि से राबस्थानी गीतों में रंगों का वैभव अनोखा और मुक्त है।  
 राबस्थानी रंग ठेक और बदकीले हैं, पर उनकी अनेकम्यता मन्त की  
 परम्परा के अतुरूप आशाकरण के संश्लिष्ट-चित्रण में साधक सिद्ध हुई  
 है। राबस्थानी जीवन में जैसे गहरे रंग की बस्तुएँ ही परम्परा का गृह-लगा  
 के योग्य रही हैं। गहरंगी बस्तुएँ 'सुरंग' कहने-मात्र से अनेक रंगों की  
 मालिख होती हैं। उक्त शब्द के प्रति इसी अर्थ का किरवात प्रचलित है।  
 सुरंग साहरियाँ' से कई रंगों वाला गुगाड़ा तथा सुरंग शब्द' से 'शुलु की  
 अमलठ कृप्याओं का चित्र बनता है। इसी प्रकार सुरंग गाय, सुरंग रक्षिया,  
 सुरंग नबासा, आदि उल्लेखनीय प्रयोग हैं। 'रंगीला' शब्द भी अनेक

१. 'बकना हरे-हरे बॉस के बसुखिया चकर निच सोहाय है (सैधिक  
 लोकगीत पृष्ठ ७९)

२. 'हरिगर बंसबा कडाम्ब मात्र क्रापक रे (बही २७)

३. 'हरिया बॉसा री क्रापकी रे मॉप कमेकी रो फूल (रा० भा०, १९)

४. 'रंभोरी बैटी मैरी मोंटी कृपा मात्र, हो मूंगल की पोर्न दाम'  
 (आदि हिन्दी की कहानियों और गीतों, ६९)

मारों को व्यक्त करता है। 'रंगीला पंग बाबूनों' में 'रंगीला पंग' से तात्पर्य अश्या बनने वाला पंग है। 'रंगीला लामन' वह प्रियतम है जो रौंकीन, मीठे स्वभाव का, हँसमुख और बातचीत में चतुर हो। 'कस्तूरी रंग की बानर माछ', पधरंगी पाग, हाथीदोंत का उबला चूड़ा, और पंरामरखी एवं पम्पकनरखी कामखी मी उल्लेखनीय रंग की ओर उल्लेख करते हैं। इस तरह पधस्वान का रंग-विम्वान लाल, कस्तूरी, कस्तूरी, नीला, उबला (श्वेत, कमखार), पीला, स्वर्णिम, मखीठी, रौंखला, कला, पन्दरी, आदि रंगों में छुम्फित है। अन्य रौंखस मी कम से कहीं-कहीं मिल बाले हैं।

### कुम्परेखीय रंग

कुम्परेख रंगों की दृष्टि से अमापप्रस्त है। कुम्प कस्तूरी के लिए क्क रंगों के उल्लेख परम्पय या रधि को व्यक्त करते हैं। पंरनी (पन्दन किम्प), मोतिपा ('मोतीपुङ्गा म्प'), हरा (हरे रूंगव ओर दल), लीला (लीला ह ओङ्गा लीला हँ ओङ्गा), रूपा (रूपे के केङ्किना) खेना (खेने की विदली), अखली (अखल की रेल), आदि परम्पय से प्रचलित रंग हैं। लाल रंग (पधरंगीला) प्राय कुम्परेख के गीतों में नहीं है।

### मेखिली रंग

मेखिल रंगों की मायिका ने तरेव लौकला प्रियतम पधम्प किम्प है, कनकि पधस्वान, मालबा, कुम्पल, और मध्वकरी मात्त के गीतों में गोप प्रियतम प्रिय लगता है। महापधू मी रौंखले सौन्दर्य में अयता किम्पल पल्ला है।

बाले कुम्परेखे कुम्प पाबाबा पा

मला माम्पा सौंखलीपा आलेमोङ्ग<sup>१</sup>

मेखिली रंगों में लाम्बे रूं बपले बाल बाले माये पर कली अलके, पायल करने बाली विगट्टी रौंखले तथा लाल पन्दन का सेप किम्पके मस्तक पर हो, ऐसे ही बायक की अम्ला की गर है। लाल पलंग और लाल रंग की

<sup>१</sup> पाजठ आले बोख लील मारमी ओम्पा, पृष्ठ १२६

शुद्धी का उद्देश्य भी हुआ है, पर राजस्वामी, मासवी और मोक्षपुरी गीतों से यह कम है। मीले और पीले रंग का प्रयोग तो बाम-भाग के लिए हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त दार्जी रंग मैथिल ललकाओं को पसन्द ही नहीं है।

### मोक्षपुरी रंग

मोक्षपुरी गीतों की प्रकृति एकरम मैथिल की मॉति है, किन्तु उसमें मैथिल की अपेक्षा कतिपय हल्के रंग लिए हैं। धानी रंग की चुन्डी छोड़े बौक्क-रम्पन्ना अपने मानके में ठरसती है। उसकी चुन्डी से रंग की मक्क उठती है। वह स्वर्ण की बाली में मोक्षग परोसती है पर बड़े बीमन बाला परदेश में है। प्रतीक्षात बारी के वियोग के लिए बाले प्रमद, अम्य, बेलक या अम्य छन्देराबाहक पधी होते हैं। बमी-बमी विबोमिनी की छाँली में बाबल नहीं होता और बैधम्म-पीडिता के बाले बेशी में सिन्दूर भी रेत्य नहीं दीसती। प्रयुक्त संकेतों में बाले रंग के साथ सिन्दूर का ठमोम इत्यम् है। विबोम को उमाने के लिए प्रकृति के बटकीले रंग विबोमिनी की दृष्टि में पीके और आब र्यबहीन है। रंगी का आग्रह जैसे विबोम के गीतों में कम होता है। परदेश बाटे हुए अपने पति से एक स्त्री करती है—

जो तुहु सभ बहूठ दिव चिति हें,

अपनी सुरतिमा मोरि बहियौ पर बिलाबे बाब ।

(बहि तुम विदेश में अधिक दिव बिताबो तो मेरी बोही पर अपना विव अर्पित कर दो।)<sup>१</sup>

पिरी के अंकन, सेकन या त्रिभय के उद्देश्य अपने-आप में विभिन्न रंगों के आग्रह से युक्त होते हैं, पर तपमें उभार नहीं होता। मोक्षपुरी गीतों के रचयिताओं को शाल और चुन्डी रंग से अधिक प्रेम है। चुन्डी रंग की छाड़ी पहनकर मिश्रमा पीताम्बरबारी मिश्रम से मिलने के लिए आग्रह रहती है। पीताम्बर औम्य का सूचक है। कृष्ण की पवित्र मोटी

और स्वनं कृप्य छँक्ते हैं। मैथिल की मौँति 'छँक्ले-गोरे' का प्रयोग मोरपुरी गीतों में नहीं हुआ है। कुमुम्बी छाड़ी, साल पट, पीठ और स्वर्णिम बस्तुओं का संकेत स्वर्ण रंग की मिथ्या का लक्षण ही नहीं अपितु प्रेम का मो छूँक है। राबस्थान अथवा मालवा प्रदेश से बाहर मोरपुर बसाने वाले ऊँचैनी राबपूत की कृपा से यदि मालवा के रंग वहाँ मिय हो गए हों तो अप्सर्व नहीं।

### पंचाशी रंग

पंचाशी गीतों में अस्य रंगों की अपेक्षा आसमानी रंग के प्रति प्रेम व्यक्त हुआ है। नायिका इसी द्विविधा में है कि वह आसमानी रंग का पापय किं छूँटी पर शरकाए—

आसमानी मेरा धगरा,  
मै केहूँ किन्ही रंगां ।<sup>१</sup>

यही आसमानी अधिक गहरा होकर राबस्थान का मिय रंग बन गया है। 'नीला पोड़ा ये अखार' ( प्रताप ) यों से राबस्थान का मिय माँक है। कुब प्रदेश भी उसके पोड़े की रंगत को मुला नहीं लका।

### विरोधी रंग

मध्योव गीतों में कहीं-कहीं एकरम दो रंग मिलते हैं ( गोरा बदन स्वामनी छाड़ी )।<sup>२</sup> मैथिल गीतों में छँक्ले रंग के साथ गौर ( श्वेत ) का प्रयोग ठीक राबस्थान के 'अला-गोरा' के सदृश है। अला बस्तुत रणमल रंग ही है। श्वेत रंग का गीतों में प्रायः उल्लेख नहीं मिलता। बोधियाँ के गीतों में अकरम ही करझों की मुलाए बगुनों के पर के समान उल्लेख बताई जाती है—

१ 'इसके बोधे रंग का है मेरा धागरा किन्तु छूँटी पर शरकाएँ ?'

—देवेन्द्र सायानी वाक्यत धावे डोह पृष्ठ ७३

२ इसु री की कागें, पृष्ठ १९



शुद्धी का उल्लेख भी हुआ है पर रावहयामी, मासवी और मोक्षपुरी गीतों से यह कम है। नीचे और नीचे रंग का प्रयोग तो नाम-मात्र के लिए हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त दोनों रंग वैदिक कालवालों को पसन्द ही नहीं हैं।

### मोक्षपुरी रंग

मोक्षपुरी गीतों की प्रकृति एवम् मीथल की भाँति है, किन्तु उनमें मीथल की अपेक्षा कतिपय हल्के रंग छिटके हैं। बाबी रंग की चुनड़ी छोड़े और सम्पन्ना अपने मायक में उरलती है। उसकी चुनड़ी से रंग की मक्क उठती है। यह स्पर्श की यात्री में मोक्ष परसेलती है पर उठे बीमने काला परवेश में है। प्रतीक्षारत वारी के विभोग के चित्र वाले झर, कला, कोयल का अन्व्य उन्देशवाहक पक्षी होते हैं। कमी-कमी विभोगिनी की झोंकें में कावला बही होता और वैष्णव-पीड़िता के काले देशों में छिन्नुर की रखा बही दोलती। प्रमुक्त संकेतों में काले रंग के लय छिन्नुर का उद्योग प्राम्य है। विभोग की उमारने के लिए प्रकृति के अठकीले रंग विभोगिनी को दृष्टि में फीके और काक दर्शनीय हैं। रंगी का आमास ऐसे विभोग के गीतों में कम होता है। परवेश वाले हुए अपने पति से एक स्त्री कहती है—

जो तुझ सख्त बहुत दिन बिति हैं,

जपनी सुरतिना मरि बहिनौ पर बिखाले जाव ।

(यदि तुम विदेश में अधिक दिव बिताओगे तो मेरी बौरों पर अपना पिय अंधित कर दो।)<sup>१</sup>

पिरी के अंकन, लैकन या चित्रण के उल्लेख अपने आप में विभिन्न रंगों के आमास से युक्त होते हैं पर उन्में उमार नहीं होता। मोक्षपुरी गीतों के रचयिताओं को लाल और कुम्भी रंग से अधिक प्रेम है। कुम्भी रंग को छाड़ी पहनकर मियतमा पीताम्बरपटी मियतम से मिलने के लिए अट्टर रहती है। पीताम्बर सोम्य का लुचक है। हृष्य की यदिय गीतों

और स्वयं कृष्य लौकिक हैं। मैथिल की मूर्ति 'लौकिक-गोरे' का प्रयोग मोक्षपुत्री गीतों में नहीं हुआ है। कुसुमी चाड़ी, माला पद, पीठ और स्वर्णिम बल्लुमी का संकेत स्वयं रंग की प्रियता का लक्षण ही नहीं अपितु प्रेम का ही सूचक है। राजस्थान का पहा मालवा प्रदेश से बाहर मोक्षपुत्र बनाने वाले अनैनी राजपूत की कृपा से यदि मालवा के रंग बरों प्रिय हो गए ही तो आपत्तय नहीं।

### पंचाक्षी रंग

पंचाक्षी गीतों में अन्ध रंगों की प्रतीक्षा आत्ममानी रंग के प्रति प्रेम व्यक्त हुआ है। नाबिम्ब इसी द्विविधा में है कि वह आत्ममानी रंग का पापद किन्तु लूटी पर लक्ष्य—

आत्ममानी मेरा चम्परा,  
मैं केहकी किन्धी रंगों।<sup>१</sup>

वही आत्ममानी अधिक गहर होकर राजस्थान का प्रिय रंग बन गया है। 'भीला बोड़ा से अलवार' (प्रथम) बयों से राजस्थान का प्रिय मानक है। कुब प्रदेश भी इनके पाँके की रंगत को मुला नहीं तथा।

### बिरोधी रंग

मध्यम गीतों में कहीं-कहीं एकत्र दो रंग मिलते हैं (गोप वदन स्वामनी चाड़ी)।<sup>२</sup> मैथिल गीतों में लौकिक रंग के साथ गौर (स्वत) का प्रयोग ठीक राजस्थान के 'आभा-गोरा' के लक्षण है। अन्ध कृतः स्वयं रंग ही है। संकेत रंग का गीतों में प्रायः उल्लेख नहीं किया। नाबिम्ब के गीतों में अन्ध ही कहीं की मुला कहीं कहीं कृष्ण लक्ष्य चार जाती है—

१ 'इसके लोके रंग का है मेरा चम्परा, प्रिय लूटी पर लक्ष्य—'

—देवेन्द्र संपादी, बाबर काने बीड, पृष्ठ ३३

२ इसुरी की पारों पृष्ठ ११

अपका घोबिया कबै बीक जाये,  
बोबै बहुआ के पौक ।<sup>१</sup>

मैथिल गीतों में चरक की अपेक्षा 'हामसिक' काव्यका अधिक है। उनमें सुन्दर-स्वियत लम्बिभक्त की मूल्य है। मूल-कविनी एवं विद्यापति ठाकुर के प्रभाववश कृष्ण मैथिल और ब्रज के दिन पाव हैं। छोकले रंग की वन्द्य का यह भी प्रमुख कारण है। छोकले रंग पर पीताम्बर ही प्रोग्य पता है। लाल झोष्ट श्यामल और पीताम्बर रंगत में बसक बड्डे हैं बिन्दे मध्य श्रेष्ठ इतल पौति अपनी निराली रंगत से लम्बे लोभ्यात्मकी को मोहती है।

### हंगामास

'रेलम डोर' का उल्लेख सभी भारतीय गीतों में मिलता है। यह स्पर्शरत्न रेबामास की दृष्टि से उत्कलनीय है। मूल गीतों में मूलने का बहो मान होता है बहो विद्ययत अनुपम लुबि और गन्ध भी रंगाम्बर उपलब्ध करने में योग देते हैं। 'लोकाह शृङ्गा' का उल्लेख लहलही गीतों में अनेक रीतों को मासित करता है। स्वर्ण या बंधन सोने की और रजत श्रेष्ठ की आमा देते हैं। हृदय, बटी, पैर, पीर, मर बन्ध, अडपटी, अथ आदि उपकरण रंग पैदा करते हैं। राजा दशरथ सोने के लङ्काले पहनकर बेल के नीचे लड़े हैं बिन्दे पल भी बंधन के हैं। पीताम्बर-चित्र को उभारने में लोभ्यात्मकी का यह बर्णन उपयुक्त है।<sup>२</sup>

'मूल' राजस्यास में एक प्रसन्न गीत है। मूल अमरश्रेष्ठ के लक्ष्य मृदुस्वर की प्रेमिनीय थी। 'मूल' के लोभ्य-बर्णन में प्रमुख उपारान रीतों का गहरा आमास लिये हैं। गीत की प्रथम तीन पंक्तियों में ही लम्बे रंग और लक्ष्मी रंगतों को एक साथ प्रस्तुत कर दिया गया है—

काखी रे काखी काखिये ही रेखी रे

१ वाजपय कावे डोष, पृष्ठ २३

२ दिविक, प्रथम साहित्य, पहला मस्य, पृष्ठ २१

होती है, कन्नड़ी काँठ में बमबै बीबली

म्होबी बरसाणे री मूमळ हाळीनी बीबे भाळी-जे रे बेस ।<sup>१</sup>

(इसके ऊपरसे कन्नड की पठनी-ही रेता मूमळ की सुन्दर शौकी में ऐसी शोभा दे रही है मावो मूरे मूरे पर्वतों की सुन्दर भेदों में बिबली बमब टगी हो ।)

रंगों का उल्लेख 'सूरजबी' नामक राजस्थानी गीत में विशेष दृश्य है। उसमें छन्दे (बोसा), लाला, बल्ला, पीसा, हय आदि रंगों का एक साथ उल्लेख है। गीतकार ने बहु रैशादें (रानी रैबी, सूर्य की पत्नी) के दस और उगता सूरज छन्दे, चूड़े की मबीठ और बहु रैशादें के नेत्र लाल, पच के ब्य और रैशादें के केय कसे बन की दास और रैशादें का पीर पीसा, तथा बन की दूध और रैशादें की खेल हरी ब्यार है। किन्तु सूरज का घोड़ा बापी-बापी से उक्त सभी रंगों का ब्याप्य है (सूर्य में लाली रंगों का समावेश है)। लोक-गीतकार की दृष्टि से सम्यक् रूप से उगता सूरज उल्लेख रंग का और दृश्य निम्नूरी है—

उगयो बजस बरयो

आपम ता सिन्दूर फरयो<sup>२</sup>

इसी प्रकार पीपल के पत्ते से नायिका के पोंच की चिक्काहट, मुपाटी से प्रज्ञा का छाहरय, सूर्य से स्वभाव की परपटाहट, बीजू की शौक से मेरी की बनावट, मचनूल (वेशम) से सुन्दरी की पीट, बाहुकी बाग से देशी की सम्भार, करली-कम्म से बमा की हुलना तथा शरीर की सूर्य प्रकाश से एवं मुल की चोदनी के निन्दरे हुए शीतल उबाठ त अपमारौ सौन्द्य कर्षण के नाम ही अपरोक्ष रूप से रंगों का आमिश्रण प्रस्तुत करती हैं। इल्ला ही नहीं, निच की पूर्वज्ञा का व्यक्त करने के लिए नायिका के पोंच का उद्यम रूप से तथा शरीर के सुमन्य और स्वाभ्य को जने हुए रही की उरयात्री से अलङ्कृत किया है ( प लो०, पृष्ठ २१८)।

१ राजस्थान के लोकगीत मूमळ (११६) पृष्ठ १६२

२ राजस्थान के लोकगीत सूरजबी (११२) पृष्ठ २११

अपना घोबिया कबै नीक छागै  
बोवै बजुबा के पाँक ।<sup>१</sup>

मैथिल गीतों में परब की अपेक्षा 'हार्मोनिक' अस्तथा अदिक है। उनमें सुन्दरस्थित सम्मिश्रण की झलक है। मऊ-अविषी एव विष्णुपति ठाकुर के प्रभावशाली कृष्य मैथिल और ब्रज के प्रिय पात्र हैं। लौकिक रंग की पठन का यह भी प्रमुख कारण है। लौकिक रंग पर पीताम्बर ही शोभा पाता है। लाल झोपट श्यामल और पीताम्बर रंगत में बमक छवते हैं बिकडे मध्य श्रेष्ठ इंदुल पंक्ति अपनी निरपेक्षी रंगत से समी लोभ्यावर्षी को मोहती है।

रंगामास

'रेलम डोर' का अन्वेल समी भारतीय गीतों में मिलता है। यह स्वयंभू रंगामास की दृष्टि से उल्लेखनीय है। मूजर गीतों में मूजने का बर्णन होया है वहाँ विनयत अनुपम कृषि और मन्त्र भी रंगामास उपन करने में योग देते हैं। 'सोसह शृङ्गार' का अन्वेल यह ही गीतों में अनेक रंगों को माणित करता है। स्वयं या बंजन सोने की और रक्त श्रेष्ठ की रंगों को माणित करता है। इब मरी, देह, पौधे भर बर, अटपटी, अय्य आदि उप करण रंग पैदा करते हैं। यथा दशरथ सोने के लङ्काई पहनकर बैल के पीले लड़े हैं बिकडे पत भी बचन के हैं। पीतामास-विष को उभरने में लोभ्यावर्षी का यह बर्णन उपयुक्त है।<sup>२</sup>

'भूमल' राजस्वान में एक प्रख्यात गीत है। भूमल अमरप्रेष्ठ के राजा मदिनर की प्रेमिणी थी। 'भूमल' के सौन्दर्य-बर्णन में प्रयुक्त उपादान रंगों का महत्त्व आभास लिये हैं। गीत की प्रथम तीन पंक्तियों में ही अल्ले रंग और उधरी रंगतों को एक साथ प्रस्तुत कर दिया गया है—

कन्धी रे कन्धी कान्किये री देवही रे

<sup>१</sup> बाजुब आये डोब, पृष्ठ १३

<sup>२</sup> देविपु, प्राम साहित्य पहला भाग पृष्ठ ६३

हाँजी रे, काबोकी काँठल में बसलै बीबली

म्हाँजी बरसाखे री मूमल हाँबी बीबे भाबी-जे रे देस ।<sup>१</sup>

(काले कबरारे कबल बी पतली-सी रेला मूमल बी सुन्दर झौलों में पेसी सोमा रे रही है मानो मूरे मूरे पर्वतों की सुपूर मेखी में बिबली बमक उठी हो ।)

रगों का अक्षेप 'सूरजबी' नामक राजस्थानी गीत में विशेष दृश्य है। उसमें सफेद (बोला), लाल, काला, पीला, हरा आदि रंगों का एक साथ अक्षेप है। गीतकार ने बहु रैशार्डे (रखी बेबी, सूर्य की पत्नी) के दंत और उगता सूरज सफेद, लूहे की मचीर और बहु रैशार्डे के नेत्र लाल, बन के कला और रैशार्डे के केश काले, बने की बाल और रैशार्डे का पीर पीला, तथा बन की बूच और रैशार्डे की कोख हरी किया है। किन्तु सूरज का घोड़ा बापी-बापी से बक समी रंगों का बताया है (सूर्य में सारों रंगों का समावेश है)। शोक-गीतकार की दृष्टि से समग्र रूप से उगता सूरज उबले रंग का और बूझा सिन्दूरों है—

प्रपथी उबलत बरबा

घाबम लो सिन्दूर धरबो"

इसी प्रकार पीपल के पत्ते से नागिण के पोंब की बिबलाइट, सुपारी से एही का साहरम, लबम से स्वभाव की बरपटाइट, नीपू की फोंक से नेनी की बलाइट, मसलल (रेलम) से सुन्दरी की पीट, बामुमी बाग से देसी की लम्बाद, बटली-बम्म से बबा की हुलना तथा शरीर की सूर्य प्रकाश से पर्व सुख की चौदवी के मित्रों हुए इच्छित उबलत से उपमाएँ सोन्दर बयन के साथ ही अपरोक्ष रूप से रंगों का आश्रय प्रस्तुत करती हैं। इतना ही नहीं, निर्र की पूर्णता को स्वरूप करने के लिए नागिण के पौवन का उग्रत रूप से तथा शरीर के कुम्हल और स्वास्थ को बने हुए दही की उपमाओं से दर्शित किया है ( प० ला०, पृष् २६८)।

१ राजस्थान के लोकगीत मूमल (११६), पृष्ठ १६२

२. राजस्थान के लोकगीत सूरजबी (११२), पृष्ठ २६१

दुन्देबलपट्ट के लोक-गायक ने भी अपने एक फग-गीत में अनेक रंगों की छटा दिखाई है। पूरा फग यहाँ उद्धृत करना उपयुक्त होगा—

बूनर बाक अपेछा बारी,	फुसमानी कड री
पैर पार हमारी।	कड सुस्ताई कड सरदइ छुन्दर
कड पिस्ताई प्यासी बंगाली	सुली कड सुनारी
अगरई कड अनारी।	अँखो खेने गम इझुरी
पीरी कड हरीरी नुकरइ।	सबरे रंगल सवारी। <sup>१</sup>

विश्रुत अकम्पा के चोकर रंगों की दृष्टि से यह फग उल्लेखनीय है। मकर तीज गीतों में एकदम एक ही स्थान पर इतने रंग अठिबारी से मिलते हैं।

श्रुतियों से सम्बन्धित गीतों में प्रकृति के रंगों की छटा मिलती है। उत्सवों स्वीहटों अपना विवाह आदि अकम्पा के गीतों के रंग परअपेसे होते हैं। धार्मिक एवं पूजा-विधियों से सम्बन्धित गीतों के रंग शक्ति हैं। चन्दन लीक, ठबसे अरुत, गबमुत्तियों के हाट, पीसा अन्दन और स्वर्ण आमा वाली बल्लियों का उन्में उल्लेख मिलता है। श्रुत-गीतों में शकल और होली के गीत भी हैं। शकल में श्वामल भयभीत का रस स्नेह की यहटाद और 'कबली' गीतों में मेधाकवी गहकटा होती है। होली के गीतों का रंग केसरिया प्रकृति का है, क्योंकि पत्ताश के फूलों (केवड़ी) से केसरिया रंग उम्माखा जाता है। अशीपी छुलानी भी उन्में लक्षणीय है।

शुद्धार के गीत ललार, मग्य और स्पष्ट सिरे होते हैं। विभिन्न पुष्पों के कर्बन तथा चन्द्र एस, बल, आकाश, बृह, पदी के अरुत और बासु की तरतटाद आदि में युक्त व्यापारों का संकेत अनेक प्रकार से रंगों को उम्माते हैं। मैथिल के 'बदगम्बी' के गीत अभिर्षय में ऐसे ही हैं।

विस्तारपूर्वक बल्लियों का उल्लेख करने की प्रवृत्ति का मध्यअशीन परम्परा से सम्बन्ध है। बायसी ने 'पचाकत' में मोखर आदि के कर्बन हाट देसी अनेक प्रकार की शक्तिअर्थ प्रस्तुत की हैं। अशीपी में 'दुललीराठ गँवार' की छटा वाले एक प्रसिद्ध गीत में अनेक प्रकार के अर्थ और

माध्यम की प्रसिद्ध बंदियों के बाम गिना दिये हैं।<sup>१</sup> सोच करने पर ऐसे कई गीत मिलते हैं। आनूपशौं का ध्यौरेश्वर कर्ण मी माध्तीय गीतों की एक प्रकृति है। इन प्रकृतिओं में रंगों के प्रति रुचिगत परम्परा का निर्बाह गीतों में लक्ष्मीय है। 'पचरंगी पुनरी', 'पचरंगी पाम', घाने की घासी, रूपे की मिच्छी, मोतिबो का चौक, पिक्की (पीला कस्त) का शकुन, बल-घोरे चीर, 'लीलो' घोड़े, रेसम डोट, काली कोयल, लाल पंखो, हर्मा मूंग की दास, बाइम दौल आदि प्रयोग धाहरन रंगतों को व्यक्त करते हैं। सभी माध्तीय गीतों में ऐसी कई रंग रंगतों के चोतक उपकरण प्राप्त हैं।

रधों की यह आमा शक-वित्री से श्री व्यक्त होती है। उनमें कल्पना-कर्म बुद्धि अथवा परम्परा के विश्वास ही रंगतों को पकड़ लेते हैं। किन रंगों में गति का आग्रस हाता है जैसे रंग माध्तीय गीतों में कठिनाइ से मिलते हैं। पूर्वग्रहों से युक्त रंग विपयक आकषय लोहगीतों में निहित हैं। इसलिए वहाँ हम प्रागैतिहासिक वित्री की सर्पा करते हैं वहाँ माध्तीय गीतों में व्यक्त होने वाली 'दिरलिखक' अथवा विचारध्वीय है।

हमें यह स्वीकार करना होया कि लोक-साहित्य में रचन ठेकड़ी रगती का उल्लेख प्राप्त है, वे सभी लोहगीतों में नहीं मिलते। 'लोहगीतों' के रंग सीमित, निश्चित और स्थूल रूप में लिखे हुए हैं किन्तु समग्र रूप से प्रभाव पड़ता है और जो कल्पि-सम्भता के विकास से सम्बद्ध वित्री को प्रतिबिम्बित करने में योग्य होते हैं।



## लोकगीतों में नई चेतना

धोखा, धीमू, बासिन्दा

गद्य दाम्बा रस है।

(—मातबी)

लोकगीत विद्यालय बच-समूह की अनुभूतियों के निचोड़ हैं, जिनमें सभी प्रकार की अनुभूतियों माननाओं की तीव्रता को सेधर फूट पड़ती है। गाँवों में रहते बाल्या केतिहर माधव मन्त्रभूतिनी, आमावीं और म्यरकठोटी का शिवाय होकर बरि बीरे इत निर्धर्य पर पहुँच गया कि 'आम, धीमू और बनिदा निवा गला दाम्बा रस नहीं देते।' यह एक बड़े बालिक की शोक का अप्रत्यक्ष रूप में पहला चरण है। यह बह भी ठीक तरह से समझने लगा है कि बुनियादी दो बर्गों में बँट गई है और निज के शोच से उठने सीखा है कि शोच शक्ति की विनाश उसके संगठन और दृष्टता में निहित है। मन्त्र के प्रति उसे विरासत है।

ई एक जाने रे गूदा मगमावा,

ई एक जाने रे—

लोकगीतों का प्रकृति वेद्य की सत्कृति और उसके वास्तविक बन बालिक का परिचय प्राप्त होता है। ऐति-रिवाजों और धार्मिक अवसर विशेष के गीतों से वहाँ एक समाजिक पक्ष का एकांगी स्वरूप व्यक्त होता है,

हों वृषप पद देखने और समझने के लिए उन गीतों की जोड़ आकर पढ़ें।  
 है जो आर्थिक कठिनाइयों और हाजिरप भी भूमि पर पनवते हैं।

गोर्खी ने गीतों को सामूहिक प्रस्था का प्रबलतम स्रोत कहा है। उसने  
 बगला की सुनगात्मक शक्ति का उल्लेख करते हुए लोकगीत आन्दोलन के  
 सिलसिले में कहा था कि "बगला सृष्टि का प्रथम दार्शनिक और आदि कवि  
 है।" राम" एकल बाव किलिबन्ध ने इसी भाव को वृषते शब्दों में रखने  
 का प्रयत्न किया है, जिसमें लोकगीत को उठ मूख वेद की तरह बताया  
 है जिसकी बहों मूलभूत में स्थित हैं और जिसमें कित्य नर-नर शान्ताई  
 गौर बीनलें फूटती हैं। नदी वेद बगला के कवि-रूप का परिभाषक है।

लोकगीतों की परम्परा इन्तान के आदिम-युग से जली आ रही है।  
 युगों की छाप उसके माथों पर पड़ी और वह अपने जीवन को इमानदारी  
 से अपनी बोलियों में प्रकटित करता हुआ आज भी विपरीत परिस्थितियों  
 में संघर्ष करता जला आ रहा है। उल्लेख समय-समय पर शोषण के किन्हीं  
 गीतों में आबाव उठार अपने भ्रम का परिहार गीतों के सहारे किया, गया  
 उल्लाह और लाग गीतों द्वारा प्राप्त किये और इतना ही नहीं, मन की  
 दिरी हुए मीठी बली के मुल और दुल को इन्हीं गीतों में बाला। यों सभी  
 प्रथर के संघर्षों का सामना करते हुए मनुष्य कर्मण अपने शम्पी की शक्ति  
 पर विश्वास करने क्षमा को उसके लिए आदिक उल्लादन और कियोपी  
 शक्तियों से लोहा लेन के हेतु बलवर सिद्ध हुआ। गोर्खी ने इसीलिए  
 लोकगीतों की रंगा को 'टी आरल किये'टबनेस आँसु हो पीपुल' कहा है।  
 युग की बदलती हुए परिस्थितियों में आज गीतों के भीतर एक नर  
 रोशनी के बिज प्रयु होने लगे हैं। उनमें 'सोने की थाली में मोहन  
 परोसा' की सम्भावित कल्पना, बीरी को देवदुःख मानने का विश्वास,  
 आबभडा, भ्रम, आदि का बीदन के कटोर सत्य से उल्लाहर बहन लगे  
 हैं। पाली तो वूर रही, रावी और बीजन में शान्ति के प्रथ प्रथ हो  
 उठे हैं।

एत हाथ से बर हम नर उल्लाधन के दिरोही नर, दुपन के अचाल

के उद्धार, अग्निवीरों के प्रति विशेष को ध्यान कर देश के स्वाधीनता-संग्राम के महत्त्व को उद्घोषित करने वाले मान, अन्तिमघटी वीरों की मौत पर शोकपूर्वक से भीगे जोड़ीले मीठ अथवा नूतन और दारिद्र्य से पीड़ित हृदय की पुकार को ध्यानपूर्वक करते हैं तो एक नया ही हिन्दुस्तान हील पाइया है। और इसी परम्परा को आगे ले जाने वाले मीलों में एक नया स्वर तथा आने वाले मन्दिप के प्रति नये विश्वास के दर्शन होते हैं।

औद्योगिक अन्ति ने समाज में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न किया। मुन्नी किसान मजदूर बनने लगे। समृद्धि एक ओर भुक्त गइ। शोचन को एक गति पकड़ने लगा और मरीची ने लोगों का मत्ता दबाया मात्तम कर दिया। 'बच से रेल चली, बंगला और पहाड़ को गए। जो पैठा था, उसमें मैंने पैरों को छोंप दिया और पैर पैर से चिपक गया'—ऐसे भाव वही स्त्री में व्यक्त होने लगे। पर बच सुदूर की स्वयंसेवा संसार पर करने लगी तो रेल लगा मत्तो लोगों पर संकट की लपटें बरसने लगी हैं। अग्रज महरे होते गए। मैहवार के कारण बेचारा अहीर गाक निर्यात, कबली और करीय गाका भूख पाया। अब तो ठेके मीठी के उन्मत्त स्तन देखकर भी हृदय में पीड़ा नहीं उठती—

मंझली के मते बिरहा बिसरिग्य, भूखि पाई कजरी कबीर।

देखिके गोरीक कमरा जोवनवा अब डठै न कनेबवा में पीर।

इस मैहवार को एक देश के प्रायः विभिन्न और मध्यकालीन परिघातों को हुआ; विशेषतः विभिन्न-मध्यकालीय कुटुम्बों की स्थिति बियाइ गई। उन्हें स्त्री-स्त्री बतों के सिद्ध तरसना पड़ा। माताका की स्त्रियों ने माक—

की हरी रंग पीखे रंग मोंगो कर दिवा

कु कु कर दिपो कीकी

की बाब रंग को तो जाव चर्ख दिपो

सुमहा काव से रंग रे

की दाब जावक सब मोंमा करि दिपो

राककर कर ही सुमहाक

भी जो तो भाव चढ़ाए दिखो  
बोला काय से जीमा है ?

(इस मुख ने हथ और पीला रंग मेंहगा कर दिया है तथा कु कुम फीका कर दिया है। अथवा मुख की मर्मकरछा से मौंग का कु कुम फीका पड़ गया है—हमारा दुहाग कौपि रहा है। साल रंग का मास चढ़ा दिया है। हम दुगड़े काहे से रंगें ? बाज-बाजल तब मेंहगे कर दिए, और शहर तो मिलना पुरवार है। भी का भी मास चढ़ा दिया है, हम पावस काहे से लावें ?)

मेंहगाए भी अन्निम्बन्धि में ब्रह्मा तक को लनेट लिया गया है, बिलसे तंगी का आधिक्य अन्धरी तट्ट से प्रभू हो तक। बारातकी का एक गोठ है जिसमें एक हरिम बरेलिये के फन्दे में कँठ बाठा है। उस समय बह हरिनी से कहता है—“ब्रह्मा के घर में काय की तंगी आ गए, तो अन्न बह तेरा मौस देकर लाएगा।”

बिचन के घर परच जोरने  
बेचि छात मोर मौस

मूले मजन न होर गुपल्ला' की उक्ति प्राय सभी ने सुनी है। किना देर में कुछ डाले कोर काम नहीं होता। इसी प्रकार मूला कवि कहीं और से कविता उत्पन्न नहीं कर सकता। उसे ज्ञान चाहिए, तभी वह रचना प्रस्तुत कर सकता है। इस संचार को निम्न परिकल्पों में बड़ी सादृशी से व्यक्त किया गया है—

ना बिरहन को लेवी पानी, ना बिरहन को बँज ।  
जाही देर से बिरहा उपजै गाई दिन औ रात ।

(बिरहों को न लेवी होती है, न बिरहों का व्यापार। बिच्छे इसी देर से पैदा होते हैं बिच्छे में उष्ट-दिन गाया चिट्ठा है।)  
एक अर्धर लोकास्ति में राम और लक्ष्मण मिलारी बना दिये गए हैं। अपनी सीमाओं और संस्कारों के अनुकूल पानी को स्वल्प प्रदान कर देना लोक-गीतकार की अपनी स्वामादिक वृत्ति है। वह राम-लक्ष्मण को मले में

के उद्भव, अंग्रेजों के प्रति विरोध को व्यक्त कर देश के स्वामी  
के महान को उद्घाटित करने वाले माख, आन्ध्रपदी वीरों को  
अंग्रेजों से मींग बोलीले गीत अथवा भूख और टाटिख से वीर  
की पुकार का सम्पन्न करते हैं जो एक वय ही हिन्दुस्तान दीप्त प  
और इसी पद्यपद्य को आगे ले जाने वाले गीतों में एक वयः  
जाने वाले भविष्य के प्रति वय विवाह के दर्शन होते हैं ।

औद्योगिक क्रान्ति ने समाज में बड़ा परिवर्तन उत्पन्न किया  
विज्ञान मजदूर बनने लगे । समृद्धि एक ओर मुह मर । दोस्त  
गति पकड़ने लगा और गरीबी ने लौरी का गला दबाया प्रारम्भ का  
'बन से गेह पत्ती, चमल और पहाड़ का यर । जो बैठा ना,  
पैरों को लीप दिया और पैर टिक से थिपक गया'—ऐसे भाव सही  
व्यक्त होने लगे । पर बन मुह की आशाएँ संसार पर डूने लगीं ।  
लगा मानो लोरी पर संकट की सफरें बरसने वाली हैं । अन्धकार  
घर । मैहपार के अन्ध बेलाप अहीर गावक विपदा, अन्धरी र  
यात्रा भूख गया । अब तो उठे गोरी के उन्मत्त लज देवकर म  
पीड़ा गरी उठती—

मंझली के मारे विरहा विचरिया सुकि गई कजरी :  
देखिके गोरीक उमरा पीबवरा अब हटै न कोरवा ।  
इस मैहपार का यह देश क शत्रु किम्ब और मन्कनी  
दुआ; विशेषतः किम्ब-मन्कनीय कुटुम्बी की स्थिति विर  
झोटी-झोटी बातों के लिए उत्पन्न पड़ा । माखका की स्थि  
की इतने रंग पीकी रंग मींगी का दिवा  
कु कु का दिवो पीबो  
की आख रंग को ली जाव अर्ध दिवो  
तुगका काप से रंग र  
की बाक आख सब मींगी कति दिवो  
एककर का ही सुसकक

कुत्ते पर कुत्ता जाओ  
 जाओ होय आता कुत्ताप  
 बोला घर सापस म्यो मात्र  
 बाहरिया मूया मरे ।

(कुत्ते पर काम करने जाओ, हो आने कामपर जाओ । प्रियतम, पर  
 अनाथ समाप्त हो गया । बच्चे मूर्खों मर रहे हैं ।)

विद्वान्ते किये ही क्यों क्या ऐसा ही इतिहास माण्टीय किसान का है ।  
 तैलोगिक प्रगति की आड़ में पूँबीबाग ने उसकी सभी इह शक्ति पर भारी  
 ढाह किये हैं ।

कर्म किसान की बुरी समस्या है, जो कर्म की समस्याओं से मुक्तः  
 प्रवृत्त है । वह कर्म लेता है, पर उसे फुका नहीं पाता । रामद वह  
 प्रवृत्ति तरह जायता है कि मूल रकम से कर तुना अधिक से कुत्ते पर भी  
 उतका कर्म कम नहीं होता । ग्रामी में जैसे हुए लुत्तोर बीबी के शोषण से  
 वह सम्पत्त हो फुका है । अपनी गाय, बैल, बछड़ों आदि को बेच देने पर  
 भी वह इन्ते लूट नहीं पाता । इसी अजुमल को कड़मे बूँट की तरह उतार  
 कर कोई किसान कधि करता है—

ये करजो सिर मत करियो, ओ मन भरिया ।

ये करजो माल लुरो से ओ मन भरिया ॥

माण्टीय निम्न-वर्ग के गीतों में परेरानियों से पीड़ित मानवता के मूल  
 में विद्रोहात्मक चिनगादियों मुलायने सभी हैं । अहीरी, क्हाटी, पेमिदी,  
 नमारों और मिस्तरियों के गीतों में गरीबी की अमिष्यक्ति अधिक तीव्र होकर  
 आ रही है । अहीरी के गाय तो गीतों से ही सुस्पष्ट होते हैं । उनका  
 माना वास्तव में कम को पयाने का बहाना-मात्र है । उनमें निरधे अधिक  
 गाये जाते हैं । ऐसे निरधों में कटोर मन में व्यस्त मानव की सात्तावर्ष अपने  
 में ही कमप्रगती हुए कपटों पर का जाती हैं । निरधय ही उनमें जीवन की  
 मन्वृत्तियों होती हैं ।

इतीवयदी गीतों में 'बैस गीत' में, जो कि वास्तु वादि का अपना गीत

सुम्नी लट्ठघने वृत्त देस में मील मोंगते हुए दिखाया है। वह उसकी अपनी परिस्थिति की वक्षणा है जिसकी वजह से वह अपने प्रिय शीत और आदर्श महापुरुषों को अपने उच्च आसनी से उतारकर अपने सम में मिलाया चाहता है। वह उन्हें अपने से निम्न और परानेपथ के मानी से घुल नहीं देकर चाहता। उसकी सुधीयों को अपनी सुधीयों से मिलाकर वह उदात्तभूति करने का प्रयास करता है।

पृथक् जीवन की कठिनाइयों के कुछ कठोर विषय पैदाई और यह त्यागी मीलों में बन्दे टटरे हैं। एक राजस्थानी शीत में शीतघर ने कौनों का उदाहरण देकर बताया है कि वे दिन-रात मेहनत करते हैं और उच्च फल प्राप्त भोगता है। इसी प्रकार किसान पैदाय दिव-मर परिश्रम करता है, पर वह स्वयं अपने परिश्रम का फल नहीं भोग पाता। उसे अपने कुटुम्ब का पालन करना भी मुश्किल हो जाता है।

दिन राती जागड़ा कर्मों

सुख से कदम व सोबा, मेरो स्वाम

बर चारो बर चारो मोठ दुहेली

मेरो स्वाम बर चारो की।

(दिन-रात भाग-दौड़ में करते हैं। सुख से कभी सोना नहीं होता, पर कमा बड़ा कठिन है। मेरे स्वामी पर-चारी बड़ी दुहेली है।)

शोषण का स्वरूप बीरे बीरे मीलों में स्पष्ट होने लगा है। इस शोषण परिणामस्वरूप कमी-कमी मूली मरने की बीरत का बाट्टी है। पत्नी जन पति से कहती है 'हे स्वामी, पर में कमाव समाप्त हो गस कन्हे मूली मर रहे हैं। ये खर्च उगते ही कन्हेवा मोंगते हैं। मैं तो से साईं! पर में पैसे की उपब नहीं। जागे का काम किस तरह करे ?'

जितना धन मजदूर कमाने जाता है तो उसके पूर्व पर भी यही स्थिति उसे अपने परम्परागत कन्हे से विमुक्त करने में योग देती है। इन परिस्थितियों में पत्नी उजाह देती है—

कुत्ते पर कुत्ता जाओ  
 बाघों को आना कुत्ता  
 बोला, पर आपण म्यो धात्र  
 टाकरिया मूछा मरे ।

(कुत्ते पर काम करने जाओ, दो जाने कमाकर लाओ । प्रियतम, पर  
 मैं क्याच समाप्त हो गया । बन्दे भूलों मर रहे हैं ।)  
 विद्वत्ते किन्तु ही बसों का ऐसा ही इतिहास भारतीय विज्ञान का है ।  
 औद्योगिक प्रगति की दृष्टि में पूर्वोक्त ने उसकी कमी हुए शक्ति पर भारी  
 प्रहार किये हैं ।

कर्म विज्ञान की दृष्टि उमत्सा है, जो कर्म की उमत्साओं से सुखद  
 उमत्सवित है । वह कर्म सेता है, पर उसे कुछ नहीं पाता । चाकर वह  
 प्रकृति तरह कामता है कि मूल रक्ष्य से कर गुना अधिक दे चुकने पर भी  
 उसका कर्म कम नहीं होता । प्रमों में देखे हुए सुदलोर बौद्धों के शोषण से  
 वह अमत्सव हो चुका है । अपनी गाय, बैल, बछड़ों आदि को बेच देने पर  
 भी वह इच्छे दूट नहीं पाता । इती अनुभव को कड़वे बूट की तरह उठार  
 कर कोर विज्ञान कर्म करता है—

ये करबो सिर मठ करिबो धो मम भरिया ।  
 ये करबो माल सुरो धो धो मम भरिया ॥

भारतीय निम्न-वर्ग के गीतों में परेशानियों से पीड़ित मानवता के मूछ  
 में विरोधात्मक विन्यासियों मुलमाने कमी हैं । अहीरों, कर्हणों, धोतियों,  
 बम्हणों और मिश्रारियों के गीतों में गरीबी की अमिष्यक अधिक तीव्र होकर  
 आ रही है । अहीरों के काण तो गीतों से ही मुलखि होते हैं । उनका  
 याना कास्तव में कम को फटने का बहाना-मात्र है । उसमें विच्छे अधिक  
 गावे जाते हैं । ऐसे विच्छे में कटोर मन में अस्त मातव की सातवाएँ बनने  
 में ही अमत्सव ही दूर कटोर पर आ जाती हैं । निरूप्य ही उनमें कीबन की  
 मन्त्रियों होती हैं ।

दुखीवगणी गीतों में 'नैति गीत' में, जो कि राफ्त जाति का अपना गीत



'प्रवाद' का विगाड़ा रूप प्रतीत होता है। प्रवाद का धार्मिक अर्थ है जोर से कहना, बनरस, झिंटी को दी जाने वाली सूचना, अन्वय आदि। यह उत्पत्ति मण्ठी के प्रसिद्ध कवि (शाहीर) खाजिलकर तो कम-से कम स्वीकार करते हैं, चाहे और स्वीकार मन्ते ही न करें। महात्प्रीय ज्ञान-योग के लेखक का मत है कि " 'प्रवाद' का अर्थ है झिंटी। यह शब्द शब्द है। गुजनी मण्ठी के पद्य-साहित्य में यह प्रयुक्त होता रहा है। अन्तः कथ प्रची यह शब्द ऐतिहासिक व्यक्ति के झिंटी चरित्र प्रवेश-बर्तन के लिए शाहीर ज्ञान-साहित्य (मण्ठी) में प्रयुक्त होता है। प्रवाद उच्च स्वरूपी होता है। उसमें गूढ़ भावों का अभाव होता है। यह साहित्य सर्वसाधारण कथा के लिए बोधगम्य, सरल, मिस्य बोली जाने वाली लोक-भाषा में रचा जाता है। उसमें उपमा, उपेक्षा आदि लोक प्रवृत्त होते हैं।" "इस प्रकार मण्ठी तथा महात्प्रीय की विशेषताएँ प्रतिबिम्बित हुए हैं।"<sup>१</sup>

'प्रवाद' अपनी विशेषताओं के कारण ही ब्रज में 'पमाप', मास्य में 'प्रवादो', मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में 'पंवार' होकर लोकगीतों में प्रयुक्त हुआ है। डॉ० सत्येन्द्र ने पमारे के विषय में कहा है कि वे "सभी अक्षरों के रूप में हैं। प्रयोग की दृष्टि से 'पमाप' ब्रज के मुहावरे में अंभर, मन्धरे, मुद्ग आदि पंवार हो गया है।" बुन्देलखण्ड में यही पंवार एक कथी कहली, जो शीघ्र ही समाप्त न होती हा कि अर्थ में प्रयुक्त है। 'प्रवाद' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सत्येन्द्रजी का कथन है— "यह बात झिंटी सीमा तक तथ्य प्रतीत होती है कि इन गीतों में पहले पंवार—परमार—चित्रियों की मायाएँ गाई जाती होंगी। वे लम्बी होती होंगी और लहारे मन्धरे से परिपूर्ण होती होंगी। फलतः परमारी के मीठ होने के कारण 'पंमार' कहलार।"<sup>२</sup> इससे सोचने के लिए एक नया आधार अक्षर मिल जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि परमार चित्रि ही महात्प्रीय में पंवार हो गए, जिसके मध्य-परम्य की प्रवृत्तियाँ 'प्रवादो' कहलाती रही हों।

१ महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष, विजया १९वीं पृष्ठ २१०

२ ब्रज लोक साहित्य का अन्वय, बीजर अम्पार, पृ २४८

समाज-शास्त्र की दृष्टि से यह प्रकारस महाउष्ट्र में 'गोबल' प्रया से प्रचलित मान्य जाता है। कुल-देवता की पूजा करते समय 'गोबल पात्र स्थापी' प्रया महाउष्ट्र में पूर्ण प्रचलित है। क्योंकि उक्त रामदेव की रचना में गोबल नाम के एक अंगन का प्रमाण लिख करता है कि यह प्रया रामदेव के पूर्व प्रचलित थी। योबल प्रया के पक्ष से गोबली नामक एक अंगन ही शक्ति बन गई। आज भी गोबली गोबल के समय पाँच देवों के नाम लेकर बाद में पूर्व-पुखों के चरित्र लेखी आकाश में गाते हैं। अतः इससे पवाड़े की उत्पत्ति कर्ममूलक प्रतीत होती है।

महाउष्ट्र में अमन मोक्षस्य के समय काव्य-साहित्य में शाहीरी सम्प्रदाय का उदय हुआ। यह 'शाहीरी' अरबी के 'शाकरी' का मउठी रूपान्तर है। मउठी के ये शाकर (कवि) पवित्र या शास्त्रज्ञ न थे। हिन्दी के फरकड़ सिद्धों की मूर्ति व भी बहुश्रुत्या में विम्वरवीय बातियों से आये थे। उन्हें बोलन के अदुमर और लोक-मया का सहाय था। इन्हीं कवियों द्वारा पवाड़ी का विकास हुआ। प्रारम्भ में पवाड़े कर्ममूलक रहे, पर जब मउठी के शाक में तथा अपने लयी और उनका पठनम बनने लगा, तब वीरों को उत्साहित करने के लिए वीर-चरित्रों का बखान मुने और सुमाने की प्रवृत्ति की प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार पठनम और नयोवृद्धि के सहारे लोक-कविता के पवाड़ी को महत्व प्राप्त होना मना। देवताओं के चरित्र-कथन काय कर वीरों के पठनम-बखान में अमन-परिचय हो गए। कर्ममूलक दृष्टिकोण विभिन्न पद्यनीतिक भी हो गया।

प्राचीन पवाड़े उपलब्ध नहीं हैं। अमन ही शिवाजी के समय के दो-तीन पवाड़े मिल जाते हैं। आ० व० केकर ने 'ऐतिहासिक पवाड़े' की भूमिका में उन पर प्रकाश डाला है। सन् १९५६ के समयमा उचित अभि-दात के एक पवाड़े से ज्ञत होता है कि उस काल के पहले पवाड़े लोकप्रिय काव्य के विषय बन गए थे। उनमें जो 'कडक्य' गाथा का ('अभिदात कथनमर मने कथाय कविता') यह कथन पवाड़ा ही है। उक्तकी रचना और वृत्तता इस बात को सिद्ध करती है कि किसी पत्नी जाती हुए पठनम

## लोक-साहित्य में 'बारह-मासी'

'बारह-मासी' गीतों में प्रायः विप्रलम्भ-सूझार ही अधिक मात्रा है। वही अरथ है कि उनमें बुद्धि-रस की अपेक्षा उगाधक व्यङ्गना सम्पूर्ण असाधों सहित प्रकट होती है। 'मैथिली लोकगीत' के उगाध 'बारह-मासी' को 'अनुभूयाम्नाक अस्मिन्मना' कहा है। बारह-मासी 'नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने शीट्स के इसके देर, गहरे नील रंग की कवच की झोलें, काले हुए बाल, मुतात्मन फलले हाथ, रबेठ कपट और मल्लार्ह कव प्रवेश वाली नासिका भी धीकी पड़ जाती है।" अपने स्वच्छ प्रामी सौन्दर्य में उठे हुए बारह मासी गीत किसी भी इन्धिम सौन्दर्य की अपेक्षा प्रमाक्याली सिद्ध होने में पीछे नहीं रहते। संस्कृत और प्राकृत के कवियों ने 'लोकसाहित्य' के सारथ्य से निःसन्देह साहित्य को अलङ्कृत किया है। विद्यापति और बाणसी ने परम्परा या लोकगीतियों से प्रभावित होकर ही अपने विरह-वर्णन में संजीवनी का संचार किया। उनमें अंकित मयों की वीर्यता एवं हरमहारिता बिना लोक-मातों के मात्मन के सम्भव ही नहीं।

'लोक-प्रचलित बारह-मासी' अथवा बारह मासी गीत काटाइ से आरम्भ होते हैं, यद्यपि इसके लिए और शास्त्रीय विषय नहीं है। रामदत्तबाबुसिंह 'राकेर मैथिली लोकगीत' पृ ३६

रम्यरस्य मान्यता-मान ही प्राप्त होने योग्य है। जैसे एक-दो मास इबारत से आरम्भित वारह-मासी भी लोक-साहित्य के मण्डार में उपलब्ध है। डॉ० रघुवंश ने वारह-मासी प्रस्तुत करने की तीन प्रमुख रीतियों का अन्वेषण किया है—'एक में कर्णम क्षेत्र से आरम्भ होता है, दूसरी में प्रायः से और तीसरी में अक्षर के अनुसार।'<sup>१</sup>

प्रचलित परम्पराजुसार वारह-मासी का प्रयोग उद्दीपक विभाव की दृष्टि से ही होता आया है। सेनापति के वारह मासों (जो वरन्त से आरम्भ होते हैं) में नही बात पाई जाती है, पर कहीं-कहीं कवि द्वारा प्रसृत स्वयम् विनय श्रुतियों के विभव-ग्रहण में बहुत उदात्त होते हैं। वारह-मासी की यह साहित्यिक परम्परा संस्कृत-काल के मार्ग से होती हुई समय-समय पर प्रांतीय भाषाओं के साहित्यों को प्ररित करती हुई, प्रवन्ध-काल के क्षेत्र में आब भी गिर गिरती है। 'छानेव' का वारह-मासी इस दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र का एक उदाहरण है।

इसमें शन्देह नहीं कि हिन्दी का आदि-साहित्य लोक-भाषा की विधि से प्रमांशित था। अतः वारह-मासी गीतों की परम्परा का लोक-साहित्य से प्रमांशित होना अस्मर्य नहीं प्रतीत होता। अपभ्रंश की अनेक रचनाओं में जो गृह्य लोक-साहित्य से प्रमांशित किया गया है, नही अतो अलकर संस्कृत के सुक्तों को प्रमांशित करने में उद्यत हुआ। अतः इसमें शन्देह नहीं कि आधुनिक वारह-मासी परम्परा लोक-साहित्य की भूमि पर आयातित होकर विचलित हुई है।

वारह-मासी गीतों में प्रत्येक मास का क्ख्य क्रम से किया जाता है। हर मास की कम्प्रेला संज्ञा में ही जाती है, किन्तु इस बात का अक्षर्य पदन रखा जाता है कि जिन उपकरणों से श्रुत-संज्ञा की वाचना की जाती है वे प्रचलित और उद्यतमूत हैं। विरहिणी शब्दों को लेकर अपने प्रवासी मिश्रण को स्मरण करती है। इसी प्रकार श्रुतियों पर मन्त्री शब्दों का

१. प्रवृत्ति और हिन्दी काल्य पृ० ४०२

पूर्व आरोप होता है।

बीधे दो मालवी बारह-मासियों दी जा रही हैं। प्रथम बारह-मासी मना-मासियों में गार्हपत्य है। श्वेती को निराले समय और पक्की पोले हुए मी बारह-मासों (ठिपों) को गाया जाता है। वर्षा और वसन्त ऋतुओं की दृष्टि से प्रसिद्ध ऋतुएँ हैं। इनमें लेकर ही मन्वन्ती विरहिणियों का प्रियोग या उच्छ्ठी है।

### वर्षा की बारह-मासी

सक्ति जागो बसन्ते मास, मसु बन बाल्यारे  
 बाल्या, बाल्यारे दुबलकलाब, हरि मन्दर सुगो रे  
 म्हासा मसुजी मे हाक्या बिलयाब\* बसन्ती करिया रे<sup>१</sup>  
 सक्ति, एक तो हासी के साथे, सूजी कुबजारे  
 सक्ति जागो बाल्य मास बिजिया बमके रे  
 मीसी मीसी पक रही तुम्ह साखुका भीजे रे  
 सक्ति जागो बाल्य मास, परा बमपीर सई रे  
 सई रे सई रे दुबारी राठ हरि मन्दर सुगो रे  
 सक्ति जागो कुँबरे मास दपेरो जागो रे  
 म्हासा मसुजी बिबा पो कुम्ह हस्तो मनाये रे  
 सक्ति, जागो बाल्य मास बिबासी धई रे  
 सक्ति, धरे-धरे गोरिधन दुबाल\* हरि मन्दर सुगो रे  
 सक्ति जागो बमपे मास, सिपाळो\* बाया रे

१. बाल्यारे

२. बलीकरय करके

३. हीपाबली के दूसरे दिन सिबरी गोबर्धन-पूजा करती है। यह बरी पूजा है जिसका तुम्ह के गोबर्धन पर्वत धारण करके ही सम्पन्न है

४. जाया

म्हारा प्रसुखी बिना पां कुण्डे सोख<sup>१</sup> पबारे रे  
 सखि, जागो पोसज मास, खीगिया छाली रे  
 म्हारा किमबखी बिना पां कुण्डे खीगिया सिबावे<sup>२</sup> रे  
 सखि जागो म्हाबज मास बसन रितु आई रे  
 म्हारा प्रसुखी बिना पां कुण्डे बसन रमावे<sup>३</sup> रे  
 सखि जागो फागया मास होखी आई रे  
 सखि घर-घर फागे देखाय हरि मन्दर सुनो रे  
 सखि जागो केजज मास गण्धेगोर<sup>४</sup> आई रे  
 सखि घर घर गण्धेगोर पुजाये हरि मन्दर सुनो रे  
 सखि, जागो पैसाफ मास उबाखो<sup>५</sup> आपो रे  
 घर-घर पका खोखाय प्रसु मन्दर सुनो रे  
 सखि जागो केजज मास प्रसु घर धाया र  
 आपो आपो से उबाली रो ज्येभ कसेना<sup>६</sup> दूदे रे<sup>७</sup>

प्रस्तुत बारह-मासी में प्रत्येक मास की संक्षिप्त रूपरेखा के साथ त्यौहारों का क्रम भी मिला दिया है, जिसमें ऋतुओं का ठाँपाव विषय प्रत्यक्ष हो जाता है।

कृपया और तथा सोक-धरियों के मिय नायक और नायिका हैं। इन्हें

- १ विस्तर
- २ सिखाता
- ३ रमख करे
- ४ गण्धेगोर-पूजा राजस्थान और माझपा की स्त्रियों का प्रमुख त्यौहार है जिसे 'ठीज' के नाम से धरवा गौरी पूजा के नाम से भी पुकारा जाता है
- ५ घरमी की ऋतु
- ६ बन्द
- ७ सौ० हीरादधी से प्राप्त

के माध्यम से वे अपने जीवन की साधारण असाधारण प्रेम सम्बन्धी प्रवृत्तियों को व्यक्त करते हैं। ब्राह्मन्जन कृष्य हैं और उनके विरह में कृष्य के अतिरिक्त उनके गोपियों भी हैं। सूर ने अपने 'अमर-गीत' कृष्य के लिए गोपियों को ही बताया है। उदय का प्रयोग भी एक लोक गीत में आया है। उसमें गोपियों उदय का नाम लेकर प्रत्येक मास अपना दुःखड़ा खेती हैं। प रामचन्द्र शुक्ल ने सब ही कहा है कि सूरदास में किसी बखी आती हूर परम्परा का विकास मालूम होता है। यह निरकल संकलित लोकगीतों में बर्धित प्रसंग और परम्परात्मक विषय से और ब अधिक पुष्ट होता है।

विरह सम्बन्धी बारह-मासी गीत दो प्रकार के होते हैं—(१) किसी आदि से अन्त तक वियोग ही हो, तथा (२) किनमें अन्तिम मास में अन्त आता है और विरहिली को उसके उपयोग का अस्वर प्राप्त होता है।

अमर ही गई बारह-मासी दूसरे प्रकार की है।

बीचे दूसरे प्रकार की बारह-मासी उद्भूत की जा रही है जो अपनी तथा के दौरान में सौंठे निवासी (म० मा ) पीपली अन्तर्गत आशय से ज्ञानर केसक द्वारा लिपिबद्ध की गई है। अन्तर्गत वैष्णव-मार्गी होते हैं जो अन्-धेवी पहनने के अरथ अन्तर्गत कहलाते हैं। इनका विवाह मामी १ मियाहूति और हरिमजन पर होता है। दूसरा बारह-मासी गीत इस प्रकार सुलता है—

गिरपर बखी बाठु आठ छोरी आवाज सुनकर में 'बखी'  
रमकम-रमकम मेहला बरसे कृष्य पांड प जागि म्मी  
पेडा<sup>१</sup> मेवा असाइ अगिथा अगाज हो गई हरिबाधी  
छोरी<sup>२</sup> पूरव बाद करत रही सुन रही अपना मेडा में

दोषी

१ मेप

२ पहला

३ पवरी गाथ

हुजूर<sup>१</sup> मेवा सवारतु छरिया मेरो मन हो रझो बैरागी  
 कोइ हूँके बामब-बनिया में हूँहूँ रमता जोगी  
 भायो मेवा जगो जाहजी धमक पड़े मेरो मन हरके  
 हे बरक पड़े बादर गरजे  
 ह्य कबोता पियां मन मोहन में सुकिया हुय नहीं अरु<sup>२</sup>  
 बरौर मेवा जगो जाहजी धाम मिछो मनु का बामी  
 मनु धाम मिछो बरु का बामी  
 समी गवाह द्विजमिछ बखो भाबय मिमरी पीमय को  
 कातिक मेवा धाम मकमोहन गोइ घोड़े मनु जाहा  
 पाइ पोताम्बर-साइ मेरवा होषन धाव ह्य जाहा  
 बलान मेवा जगो जाहजी खीरक्य रझी मनु कौहु  
 सँचिरी धुरत वे मुक्य विनाजे गजसोवे माकिपन भाया  
 भाइ मेवा जगो जाहजी मलिपन में करो उठवैरी  
 सुनो सली रो मौर मन की छेती पही बेघी सँइ  
 प्राग्न रझ रझो मन मीघन जाह गुभाज मक्य भोरी  
 भर भर मुठिया ह्य ह्य्य वे छपर-छपर केहो होषी  
 वेत चिताम्बर मेरे मन की जगो भाज मनु नहीं सुजे  
 सुनो सली रो मौर मन की मन का हूँ न हुय पोड़े  
 बैमाज मेरो जगो जाहजी पीमय पूजन में बामी  
 हरमन वो गहारा ह्य्यजी जग्य बौरमरी द्य जहती  
 सेइ मेरो जगो जाहजी ऊपर द्योय गजसव की  
 ऊपर द्योया मारन की  
 मल अमोदा बरे चारती धाम मिछे बरु का बामी  
 'सुरदाम' मनु तहमे मिजब की हरिचरनों की बखिबनी  
 मनु चरनों की मै वासी

१ हुजूर

२ मनु का बामी



माध (माध) : हे सखि जगु बसन्त चायेके (मै )  
 'माध है सखि पाखा पवतु है

बिन पिया जायो वा जाइ है (मो०)

३ कागुन (कागुन) : 'कागुनी बपार तद्वर पाठ लखे  
 भरि जाय' (घ०)

'सब रंग बनावक खेखन विवड सग है  
 कागुन है सखि होरि चायक' (मै०)

'कागुन सखि पग लेखतु है  
 पर पर उदेखा कबीर है' (मो०)

१० केत (केत) 'केत फुले है बन देसुब' (घ ) (लीड)  
 'केतहि केवा फुलिय गेक  
 फुलि गेक सब रंग फुल' (मै )

११ केसाय (केसाय) : 'पथय बखत बय बरसत धाम (घ०)  
 बिरह कुबकत मोर गात है  
 कैसे कले हम उखम धाम (मै )

'केसाय ए सखि उखम धामे  
 तब से होखा नीर' (मो )

१२ केड (केड) : 'यधुई बरती जो धममाय (घ०)  
 केड मसत मलि लूक धामे  
 सर सर बखेक समीर' (मो )

'बिन नाय बन्धन हीतहाविड  
 यधुके जात देह पारे' (मै०)'

१ घ०—सबकी मै —मैचिडी मो —मोबपुरी और

माखकी के लिए प्रयुक्त संकेत है

## सती प्रथा एवं तत्सम्बन्धी लोकगीत

भारतीय इतिहास के समस्त कालों में सती प्रथा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रही थी।

‘सती प्रथा’ शब्द से यहाँ तात्पर्य स्त्री के उस मृत्यु-उत्सव से है जिसमें वह अपने पति के शव के साथ अग्नि का आरोहण करती है अपना उसी मृत्यु होने पर विद्योग में किसी भी प्रकार अपने प्राणों को प्रसन्नता पूर्वक त्याग देती है।

यद्यपि श्रृंगैरिक युग में सती प्रथा के प्रमाण नहीं पाए जाते, किन्तु उसके परन्तत् इस प्रथा का जलन व्यवस्था करने लगा। पति की मृत्यु के बाद ‘विधवा’ की उच्च प्राप्त करने वाली नारी धीरे धीरे अपने अधिकार खोने लगी। अज्ञ-मूल्य धार्मिक व्यवस्था की दयनीयता ने भारतीय नारी को वह भी ह्युद्योग बना दिया। देश की सामाजिक एवं राजनीतिक दशावस्थाव्यवस्था परिस्थितियों ने बह्य शक्तियों से नारी की सुरक्षा के हेतु उसके प्रति उचित नर के समस्त किरदारों को दहा दिया। भारत में आनन्दवासी अनेक व्यक्तियों अपनी कन्याओं का बच किया करती थीं। पूर्व प्रचलित सती-प्रथा इनके सम्पर्क से यहाँ अन्त होती से पकपने लगी। मध्य अष्टौन युग में उसने बौद्ध का रूप लिया। भारतीय नारी ने उसे एक उत्सव के रूप में अपनाया। पति की मृत्यु के परन्तत् पत्नी ने

अपमान और प्रतिष्ठा होने की सम्भावना का इस प्रकार निवारण हो गया। विदेशियों के आगमन से लगाकर अंग्रेजों के उत्थान-काल तक यह प्रथा माटी के सख्त बलिदान की एक लम्बी कथानी बन गई। मृत्यु की हँसते हँसते अपनाने की यह परम्परा अपने आप में एक रहस्यमय इतिहास हो गई, जिसमें तरह-तरह की बय-बयानबय एवं माटी के असंख्य अन्वि-पुम्बन निहित हैं।

ब्रिटिशम ब्रिटिश द्वारा सन् १८२६ ई० में स्त्री-प्रथा अद्वैतादिष्य घोषित किये जाने तथा उसको रोकने के हेतु फ़ोरो लिक्चरों के बार में हुए रूप से यह प्रथा इस देश में बनी रही वहाँ तक कि बीतती शताब्दी के मध्य तक स्त्री होने की परमाई होती रही। अपने बंश को गौरवदायी बनाने अथवा विशेष परिस्थितियों के रक्षण में अक्सर अनेक प्रान्तों में, दुर्बल रूप से बयाल में, यह परिपाटी ने अपनी विषयार्थों को बलपूर्वक अग्नि में पीकित श्रेष्ठ है।

स्त्री भारतीय माटी के लिए अद्भुत और रहस्य का निवास है। माखीर प्रामोक्ष्य समाज में प्रचलित अनेक सांस्कृतिकों में इस रहस्य की इन्द्रवर्णी व्ययना नहीं गहराए से व्यक्त हुए हैं। हर गीतों में अग्नि आरोहण करने वाली विषया के सतुपक पक्ष के परिचय अत्यन्त प्रखर तथा विदु-पक्ष में मों-बाप, माई-बहन आदि ऐसे बिलकूल व्यक्त किये गए हैं।

गीतों में निहित स्त्री का कथन श्रेष्ठ प्रकृति के अक्षरूप ही मिलता है। ससुराल-पक्ष में साध, ससुर, बेकर, बैठे बेकली, बेदानी, पति और पुत्र-पुत्रियों तथा पितृ-पक्ष में माता-पिता और भाई-बहन विशेष रूप में अत्यन्तनीय परिचय हैं।

स्त्री पिता का आरोहण करने के पूर्व छेलाह शृङ्गार करती है। माते पर 'भूमर', बोका, बाहुओं में बाहुकल, बहाइनों में गबदे, गुड़ा, पैरों में मूषिका, नेकर, गले में हँसती तथा जब पर छाहू पहनकर वह तैयार होती है। आगुस्वी एवं अन्य शृङ्गार की कलुषी के पास बोलिनी के अक्षर मधुरि बरत जाते हैं तथापि अन्तर्निहित माटी में खेद परिकर्षण

सहित नहीं होया। मालवी का एक छठी-गीत लीबिए किसमें 'सायब' (प्रियतम) से दूरी पड़ने की कल्पना राग पीछू के स्वरों में समान रूप से मालवा-मर में गाई जाती है।

सायब को डोखो०—  
 माया के भस्मर बड़ाओ रे सेवग म्हाता  
 सायब को डोखो बन्द्य भीचे क्यो  
 बन्द्य भीचे क्यो, चमेसी भीचे क्यो  
 सायब से केटी<sup>१</sup> मठी पाओ रे सेवग म्हाता  
 सायब का डोखो बन्द्य भीचे क्यो  
 बन्द्य<sup>२</sup> दे बुकखो बिरावो<sup>३</sup> रे सेवग म्हाता

सायब को डोखो०—  
 भबिया रतन बड़ाओ रे सेवग म्हाता  
 सायब को डोखो०  
 पयलवा नेबर बड़ाओ रे सेवग म्हाता  
 सायब को डोखो०  
 पद्गी के साखूओ रगाओ रे सेवग म्हाता  
 सायब को डोखो बन्द्य भीचे क्यो—

(हे मेरे परिकन, मेरे माथे के लिए भस्मर पड़ाओ प्रियतम का डोखा  
 बन्द्य के बुध के भीचे छाड़ा है। वह पन्दन के बुध के भीचे छाड़ा है,  
 चमेसी के बुध के भीचे छाड़ा है। प्रियतम से बिकोम न होने हो, मेरे परि  
 बय, प्रियतम का डोखा बन्द्य के बुध के भीचे छाड़ा है। मेरी कलाइयों के  
 लिए सुहागनों, नूरा तैयार करो, भबिया में रतन बड़ाओ, पयलवा एवं  
 नेबर पड़ाओ तथा साखू हँगाकर तैयार करो, मेरे परिकन प्रियतम का डोखा

- १ बरिजब
- २ बियोग
- ३ सुहागनों
- ४ नूरा तैयार करो

जन्म के हुए के नीचे लड़ा है ।)

फिरो-फिरो गीत में आम्पस भड़ाने की यह प्रार्थना सधुर से भी जाती है। कुछ ऐसे भी गीत उपलब्ध हैं जिनमें छत्री अपने कमल बैस को छोड़कर जाती है। उच्छ परिवारिकों से विभोग तो होता ही है, फिरो खेत-बसिहाल, घर-बार आदि सभी सामग्री इस पारिवर्ग सधुर में बर्हो-बी तहाँ रह जाती है। ठराहरश्याम नीचे का गीत देखिए—

सकियारा बेरा हवाबाग में कक्षिपत सेंबा<sup>१</sup> दिगडाब<sup>२</sup>

बाबड़ छोमे बीड़ो पाल को—

कक्षिपत मेरुपा साम्-सूसरा ये म्हारी सठिपार

कक्षिपत मेरुपा मापप-बाप, हो मोटा का बाबा<sup>३</sup>

बाबड़ छोमे बीड़ो पाल को—

हॉसल मेरुपा साम्-सूसरा रोपठ<sup>४</sup> मेरुपा मापप-बाप

मोटा का बाबा, बाबड़ छोमे बीड़ो पाल को—

कक्षिपारी बेंसी घम्मरपाब<sup>५</sup> ये म्हारी सठिपार

बाबड़ छोमे बीड़ो पाल को—

सज्जारी बेंसी घम्मरपाब मोटा का बाबा

बाबड़ छोमे बीड़ो पाल को—

कक्षिपत मेरुपा हंडा धोवरा<sup>६</sup> कक्षिपत मेरुपा सूरजपोध

मोटा का बाबा हो बाबड़ छोमे बीड़ो पाल को—

कक्षिपत मेरुपा देबर खेड कक्षिपत मेरुपा बाबा बाबड़<sup>७</sup>

१ सेंबा करवा

२ कक्षि

३ बड़े की पुत्री

४ रोठे हुए

५ घम्मर-पाब

६ माँ के बरों के कमरे

७ छोटे बाबड़

सती प्रया एव सत्सम्बन्धी लोकागीत

२१

मोझा का बाबा बाबूज छोड़े पीपी पाल को—  
घरे छोड़े नहीं ने बाग मरोही म्हाती सतिपार  
अविपय सेही दिगबाज मोटा का बाबा,

बाबूज छोड़े पीपी पाल को—

(सती अग्नि-आत्मेहस करने के लिए प्रस्तुत है। उसने सत्य-समुद्र को  
ज्या हुआ और मौ-बाप को रोटा हुआ छोड़ दिया है। उसके छावन की  
मरपास' (अमर-बाह्य अर्थात् प्रियतमा) बैस गई। उसने गहरे-पीपे  
बाबूज छोड़ दिए, सूरजपोष छोड़ दी, तथा देवर-जेठ को भी छोड़कर बने  
की बानी ने अग्नि-स्वाय करने के लिए पीपे पर चढ़कर बाग मरोह की।)

'अविस्त मेक्या सत्य-सत्य' वंकि कहीं-कहीं भी सती के पीपी  
में प्रयुक्त हुई है वही स्वामाधिक रूप से स्वैय प्रकृति 'ओशय-ओशय',  
मौ-बाप आदि सम्बन्धियों एवं बड़े-बड़े पत्नी का अस्तेज करने से नहीं  
चुकी। अग्निर्भवा की यह परम्परात्मक शम्भासती कियेकः राजस्थानी  
गीतों से आर है। एक गीत में 'सूरजपोष' का अस्तेज तो स्पष्ट प्रक

कटा है कि यह गीत उदयपुर से आता कटा हुआ मातवा की भूमि में कटा-  
रोहित हुआ है। सेकक को मेनाइ से एक ऐसा गीत मिला है जिसमें बोबा,  
हमा और बोसा नामक स्त्रियों के सती होने के कथन हैं। 'अविस्त  
मेक्या' → वंकि का प्रयोग उक्त गीत में भी हुआ है। अतः निरूपण ही  
सती के गीतों पर राजस्थानी प्रमाण अचिह्न है।

अम सुन्दरणी (त्रिशा शाबापुर, मण्णमात्य) ठिघने के स्व० ठाऊ  
की पत्नी रानी गोपालकुँवर चालीस-पचास वर्ष पूर्व सुन्दरणी ही में सती  
हुई थी। इत कटवा का अस्तेज सम्पत्ति-स्वरूप स्थापित की गई प्रस्तर  
शिला के अतिरिक्त गौँ की पुजनी स्त्रियों में प्रचलित एक गीत में भी  
अचिह्न इदम्परी बँस से प्रस्तुत हुआ है। गीत है—  
म्हाती सती माता कौँ से दूज-बादल कलगा'

१ उखरे

म्हारी छती माता कौं ब लो दिबो हे मेकाय<sup>१</sup>  
 ओ राजा की राखी बमण सुरज पे माजी सत करवा  
 म्हारी छती माता मकारमा<sup>२</sup> पे एक बात्क उचळ्या  
 म्हारी छती माता सिम्बरसी में दिबो हे मेकाय  
 राजा की राखी भापका सामब<sup>३</sup> पे माजी सत करवा, धादि

आगे की पंक्तियों 'अधिपत मेकाय'— 'पकि से आत्म होय  
 मूखे हुए साठ-समुद, रोते हुए मों-बाप, सिंघित होते हुए आस और इमली  
 के बूझ, सिपावे-कुवाते ओचप-ओवरी, फटाहा तथा फहने में रोते हुए  
 बालक को छोड़ने के अज्ञेय प्रस्तुत होती हैं।

लिपिबद्ध हिन्दे गए ठक छती के गीत बहुत पुराने हैं। किन्तु बूझाओं  
 से ये गीत प्राप्त हिन्दे गए हैं, वे पचास-छाठ वर्षों से इन्हें निरन्तर दाती  
 आ रही हैं। एक-दो बूझाओं ने अपनी आँखों से छती को बिता पर कपटे  
 भी देखा है। समय का चल बड़ जाने पर अन्धविश्वासी एवं अज्ञान  
 मस्तिष्कों द्वारा छती के लिए छठ-सम्बन्धी अनेक किंवदन्तियों प्रचलित की  
 जाती हैं। ऐसी किंवदन्तियों बढवा के पुरानेपन की वृद्धि के साथ और भी  
 अधिक बढ़ती हैं, किन्तु ये तथ्य की लोक करवा आगे पककर एक अस्तवा बन  
 जाती है।

१ दुग्धम

२ राजा के पीहर का स्वाम

३ स्वामी, मिश्रम





हैं, किन्तु अविच्छिन्न में विभाटाएँ ही दुष्टा और आत्मापारी चित्रित की गई हैं। सीत के चित्र में आहपूर्वक और प्रायः एकांगी हैं। सुखी परिवारों के गीतों में सप्त यशोदा अथवा कौशल्या वैसी सुलक्षणाएँ एक शान्त स्वभाव की, मन्द शहमी-सी, तथा देवयानियों, बेटानियों गनगौर के मुख-सी ब्याह गई हैं।<sup>१</sup>

बधुओं का जीवन कहीं-कहीं सुलभ है, किन्तु प्रायः अनेक परिवारों में बधुएँ अत्यन्त जीवन व्यतीत करती हैं। समुदाय में वहाँ जीवन बसे सिरे से प्राप्त होता है, अत्याह और उर्मगी की अपेक्षा उन्हें विदुर-विमुरक बीना पड़ता है। बधुओं ने अनेक गीतों में अपनी माताओं से बड़े ही दुःख-मरे शब्दों में समुदाय की शिकायत की है। वे अपने समुदाय के दुखी जीवन की अपेक्षा पीहर में रहना अधिक पसन्द करती हैं। समुदाय में वे बोलने के बँस-सी दिव-मर काम करती हैं और बात-बात पर सप्त-बन्द के जाने सुकती हैं; बेटानियों दुःख बलाया करती हैं और वे पाकपनी की तरह टनकी आश्राओं का पालन करती हैं।

सप्त का झड़ना-मझड़ना तो मित्र का कर्म है। सोचगारों ने सप्त का किशना बटोर, कर्मश और कला चित्र उपस्थित किया है उतना अन्य का नहीं। एकस्थान में तो कहावत ही हो गई है—'फोग आलोर कले सप्त सीधी ह लड़े' अर्थात् फोग गीला हो तो मी बस्ता है और सप्त सीधी हो तो मी लड़ती है।<sup>२</sup> सप्त अपनी कू के साथ फिटना हुए बरतान करती है वह मित्र पंक्ति में बेलिए। एक बहन अपने मूर से कह रही है—

१ राजस्थान के ग्रामगीत—सूर्यकरण पारिषद द्वारा सम्पादित

गीत ८ : 'कवसत्वा की सास मोरी' पृष्ठ १६

गीत ९ : 'सासव बसोवा मिबी' १०

„ १ 'शिङ्गमी सो बबदूधी १८

„ १ 'देपोर-बेटाक्यों म्बारी

बाय गोरपों रो मूमकी,' पृष्ठ १८

२ राजस्थान के ग्रामगीत पृष्ठ २६

सबका लिमाखी मैना सबका पिआखी रे ना ।  
 मैना बधि जावे पिङ्गली टिकरिया रे ना ।  
 मैना छोहू मँहि तबरी कल्पोना रे ना ।  
 मैना छोहू मँहि गोक बरबहवा रे ना ।  
 मैना छोहू मँहि हुकुरा बिकरिया रे ना ।  
 मैना छोहू मँहि देवरा कल्पोना रे ना ।  
 सबका छोहाखी मैना सबका पहिराखी रे ना ।  
 मैना बधि जावे कम्बी हुगरिया रे ना ।  
 मैना छोहू मँहि बनरी छोहमिया रे ना ।  
 मैना छोहू मँहि देवरा कपोरिया रे ना ।  
 साम् कर्षी मरि बसना मँजाखी रे ना ।  
 साम् पनिया पताक से मराखी रे ना ॥<sup>१</sup>

साठ ने अनेक घरों में बघुओं का बीजक सम्मिताप करा रखा है। नीची जातिवर्गों के गीतों में साठ के अत्याचार ठी कुल कर गाये गए हैं। जिनको पत्नी बल्लते हुए अथवा लेट में धन्य काम करते हुए अपने कुली बीजक की अप्पार गाना करती हैं। बघुओं ने साठ बनद, बेइतानियों अथवा देउतानियों का जो अप्पयस अपनी बुद्धि और अतुमब से किया है, वह पक्षपातमूल्य होने पर भी अप्पार की सीमा से परे नहीं हो पाया है। एक बच्चे ने अपने परिवार की तीन बिरों के सम्बन्ध में गाया है—

साठ

साधू तो ए मइया हुनिया बोकरिया रे ना ।

मइया मू हया में जहर के गँठिया रे ना ॥

( है माद, साठ की हुनिया बोकी है, लेकिन उनके मुँह में जहर

१ औत्तपुर बिरों के एक गीत की संक्षिप्त—'हमारा माम-साहित्य', पृष्ठ १११

की गॉठ है।)१

जेठानी

जेठानी तो प महवा कारी बरसिया रे बा ।

महवा छिन बरसै छिन धाम रे बा ॥

(हे माइ, जेठानी तो कारी पटा है। क्या-भर में बरछती है, जब-भर में धाम हो जाती है।)२

देवरानी

देवरानी महवा बोने के बिछरिया रेना ।

महवा छिन बिकरै छिन पैके रे बा ॥

(हे माई, देवरानी बोने की बिकली है; कमी बाहर निकलती है, कमी भीतर जा बैठती है।)३

येछा प्रतीत होता है मानो बहू बरों में मूक पशु की मूर्ति एक बड़ा सड़क चिन्ने खली जा रही है। कमी सामने बोलती नहीं। कमी बोरे अपने गॉठ का नाते-दिले का व्यक्ति का जाता है तो वह बरों से दबा हुआ अपना बुलझा सुना देती है। यह बुलझा वह अपनी एक ही रखने के लिए आग्रह करती है। मन्वस का वहाँ प्रश्न जाता है, वहाँ वह अपना कुछ प्रश्न होने देना अपना अपमान समझती है। वह मर्द की अपना कुछ सुनाकर उसे अपनी गॉठ में बाँध लेने की सलाह देती है। इसी प्रकार मन्वस भी बगद से उठी प्रश्न बुर रहना चाहती है। वहाँ एक और मन्वस की कोयल है, वहाँ बूछी और वह मन्वस के ड्रेप का चिन्मर भी है। 'सोहर' के गीतों में मन्वस-भौबार्ह के जाने हैं और पुन-बग्म की आइ में वह अनेक प्रकार के पिछले राग ड्रेपी को दृष्ट करना चाहती है। मासवा के एक

१ 'हमारा धाम-साहित्य', पृष्ठ १९

२ 'हमारा धाम-साहित्य' पृष्ठ १२०

३ 'हमारा धाम-साहित्य', पृष्ठ १२०

'सुपुपी' गीत में मावब बादन को नन्द के घर सुपुपी न देने की आज्ञा देती है, किन्तु मावब मूख से सुपुपी दे चुकी थी। मावब अपने पति से सुपुपी वापस लाने की प्रार्थना करती है और बेचाप पति मजबूर होकर नन्द के घर जायो उस को सुपुपी देने जाता है। 'मामेय' अथवा 'बघावा' के गीतों में मावब गहने बेचकर अपना सम्मान रखना चाहती है—

बस जिन जायो बनयी कि मौजी दुखित चाहें।  
बेचत्यों में लोके के बेसरिया बिचरिया छके बजतेई व

(हे नन्द, ऐसा न सम्मना कि मावब छट में है। मैं अपने माक की बेसर बेचकर मी पीसो छाड़ी लेकर जाती हूँ।)<sup>१</sup>

हिन्दू परिवारों में बेटी की विदा के गीतों द्वारा हृदय-त्रासक हरम उपस्थित हुए हैं। शास्त्रकपन से पर में र्मी दूर बेटी छय-भर में वृषरे की होकर विदा होने लगती है। लड़की का ब्रम् मानो एक दुख का कारण तो जाता है। यौवन के आते ही वह अपने ही पिता के घर परार-ती हो जाती है। फिर गने पर में नर-नर बातें। माँ ने मानो पाक-योतकर इठी पर नडा किया कि वृषरे के हवाले कर दिया जाय।

मैं हूँ बम्मा ठरी गाय की बहिन  
जिन मोई दुख भ्याय।<sup>२</sup>

गाय की बहिन की यह उरमा तो कहीं-कहीं माटी के सम्पूर्ण बीदन की उरमा बन जाती है। कन्या पर की पाली-योसी कोयल अथवा चिड़िया होती है, जो बड़ी होने पर उड़ जाती है। वह है 'कुलग पवी की तरह, बिलके भ्याय में मी ब्रम्भूमि में रहना नहीं बदा।'<sup>३</sup> ब्याह होने पर कर के कर मी लिपों बहू को लाने देने और उध पर भ्याय करने से नहीं चूखती। वे हँसी-हँसी में गा देती हैं—

१ 'हमारा ग्राम-साहित्य' पृष्ठ २६  
२ 'राजस्थानी ग्रामगीत', पृष्ठ २  
३ 'देसा की मैं बूँबको परदेसा मेरा बास के परदेसा मेरा बास

की गॉठ है।)<sup>१</sup>

बेटानी

बेटानी तो ए भइया कारी बवरिया रे ना।

भइया छिन बरसै छिन घाम रे ना।

(हे मार, बेटानी तो कारी पय है। बस-भर में बरसती है, घाम-भर में घाम हो जाती है।)<sup>२</sup>

देवरानी

देवरानी भइया कोने के बिलरिया रेना।

भइया छिन किअरै छिन पैडे रे ना।

(हे मार, देवरानी कोने की बिलरिया है कमी बाहर लिपकती है, कमी मौसम का बैठती है।)<sup>३</sup>

येसा प्रतीत होता है मानो क्यू घरों में मूक पशु की मौखिक लय बस सहन छिने जाती जा रही है। कमी सामने बोलती नहीं। कमी खेर अपने गाँव का नाते-रिाते का व्यक्ति का जाता है तो वह वर्षों से रना हुआ अपना दुखड़ा सुना देती है। वह दुखड़ा वह अपनी तक ही रखने के लिए आग्रह करती है। मायब का वहाँ प्रन जाता है, वहाँ वह अपना दुख प्रकट होने देना अपना अपमान समझती है। वह माइ को अपना दुख सुनाकर उसे अपनी गॉठ में बाँध लेने की उताह देती है। इसी प्रकार मायब भी बन्द से लती प्रकार बुर रहना चाहती है। वहाँ एक ओर बन्द बन की खेला है, वहाँ दूसरी ओर वह मायब के दोष का शिखर भी है। 'धोहर' के गीतों में बन्द-मीमाई के तान हैं और पुन-बगम की आइ में वह अनेक प्रकार के पिछले राग देवी को वृत्त करना चाहती है। मायब के एक

१ 'हमारा घाम-साहित्य', पृष्ठ १२०

२ 'हमारा घाम-साहित्य', पृष्ठ १२०

३. 'हमारा घाम-साहित्य', पृष्ठ १२

१. 'सुपुरी' गीत में मावब मावब को नन्द के घर सुपुरी न देने की आशा होती है, किन्तु मावब मूस से सुपुरी दे चुकी थी। मावब अपने पति से सुपुरी मास जाने की प्रार्थना करती है और बेचाप पति मथरूर होकर बहन के घर आधी रात को सुपुरी देने जाता है। 'मामेरा' अथवा 'बपाबा' के गीतों में मावब गहने बेचकर अपना सम्मान रखना चाहती है—

अस जिव जानो बनदी कि मौकी हुलिय करहै ।  
बेचलौं मे नाने के बेचरिया पिचरिया लौके करठेई ॥

(हे नन्द, देखा न सम्झना कि मावब क्या मे है। मैं अपने नाक की केर बेचकर भी पीली चाड़ी खेकर आती हूँ।)<sup>१</sup>

किन्तु परिवारों में बेटी की विदा के गीतों काय हृदय-द्रावक हरम उप रिक्त हुए हैं। बालकपन से घर में रमी हुई बेटी दूध-भर में बूछरे की होकर विदा होने लगती है। लड़की का ब्रम् मानो एक दुस का करस हो जाता है। मौन के आते ही वह अपने ही पिता के घर पराई-सी हो जाती है। फिर बसे घर में नद-नद करते। माँ ने मानो पास-पोछकर इषी किए बड़ा किना कि दूछरे के इबाते कर दिवा बाय।

मे हूँ अम्मा केरी माय की बघिबा  
जिब मोलै मुक अयाय।<sup>२</sup>

माय की बघिबा की यह उगमा तो कहीं-कहीं नारी के सम्पूष कीकन की उगमा बन जाती है। कन्या घर की पत्नी-पौठी कोयस अथवा विद्विया होती है, जो नई होने पर ठइ जाती है। वह है 'कुसंग पक्षी की उरद, विठके मय्य में भी बममूमि में रहना नहीं बदा।'<sup>३</sup> ब्याह होने पर नर के घर भी तिनपौ बहू को जाने देने और उछ पर ब्वय्य करने से नहीं भूखती।

१. 'हमारा प्रेम-आहित्य' पृष्ठ २६

२. 'राजलक्ष्मी प्रेमगीत', पृष्ठ २

३. 'दिसां की मैं हूँ कपरी परदेसां मेरा बास के परदेसां मेरा बास'

पूरी छप्पर पूरी, चौहरी पेची क्यूँ रखी पेची

(पिता ने क्यूँ का विवाह हलसी बड़ी करके क्यों किया ?) अथवा 'बनयी का बन्म किन्ती औपेरी रात में हुआ या ?' (अर्थात् वह समझती नहीं है ।) साय ही अन्य गीतों में बहुधा ने रात का मवाक उठाने में अवर नहीं रखी । पंजाबी कबुझों ने अपनी अकञ्जतापूर्वक कहा है—

कोठी होख पसेरा निरकञ्ज सस्सविपु बर मेरा

जाय क्या बयेरा हुब रैहवा सूँदा मेरा

(कोठी के नीचे पोंच सेर का बाट है । हे रात, तू बाहर निकल, अथ यह पर मेरा है । तू बहुवेप ला चुकी, अथ क्या-कुछा मेरा है ।)

भारतीय नाटी के किठने मी अिन्न लोकगीतों में पाये जाते हैं, ये निस्सन्देह आधुनिक अथवा अथवा गद्य द्राप प्रस्तुत अिन्नो की अपेक्षा कहीं अधिक सज्ज हैं । शब्द ने मध्यवर्गीय बंगाली परिवारों की नाटियों के अिन्नय में सज्जता पाए है, किन्तु उन्की सेखनी मी मोल लोकगीतधरों की गेय पंक्तिओं के सीधे-सधे अिन्नो के सम्मने हार मान यर ।

भारतीय नाटी का ही अर्ध-अस्थ रहती है । लोकगीत उन्की अस्थता को उपाहने में सुप नहीं हैं । समुदाय नाटी हुई बेटी को विदा करते हुए माँ अनेक आशीर्वादों के साथ यह मी अरती है—

बूखे ही धाय परीठि रो पाखी कये ब तूँ सेपवाई को

पबोसबय ही सीख ब खीबै छासू रो हुकुम बजाओ

(बहाँ चूखे की आग और पानी—पर का पानी—कमी अमास न होने देना । पड़ोसियों की सीख न लेना, साथ का हुकुम बजाया ।)<sup>१</sup>

गृह-अस्थ के गीतों में नाटी के माँ की बेटी हृदय-सपरी अमिर्भक्ता अस्थत हुई है, बेटी कम देखने में आती है । नाटी का विरह स्वास-स्वाव पर हृदय में मीस पैदा करता है । अिन्नय सज्ज राजा है और वह खनी, पर विरोग की अस्थता में दोनों दुखी हैं । अहाँ अरै मादिअ खुशी है, पर

१ पंजाबी गीत, पं सत्तरास

२ 'राजस्थानी प्रानगीत', पृष्ठ १२

१ उलझ पति हूँ आपका बालक है। पूरा किटी के भी अब बचान है, वो किटी के मारे की टिकुली देल बल उठवा है।<sup>१</sup> और किटी अब बालम छोड़ा है, बिसे हँगाड़ी पकड़कर पत्नी बाजार हो जाती है और बेचारी बिलके पुषा होने के दिन मिन रहो है।<sup>२</sup> एक और यह दया है तो दूखरे और कियोमो में अपने आपको मिय देने की साध है। देखिए बुलन्द शहर के पमारों के एक मीठ की निम्न पंक्तिओं में बिना मुन्दर मय है—

जो में देसा जानूँ मेरे हरि तब जापैगे  
बकली नैबन का सुरमा हर डोरें में कर रहती \*

एक नेपत्ती कियोमिन अपने मन की बात मन ही-मन में न रख ती है—

स्वर्ग के मरि मौबाल तारा  
म गान्ध छादी न

पेट को छुरा मुझे मों चाउक  
म मग्न सगरी न

(आकाश पर भी लाख तारे भरे हैं, मैं उन्हें पिन नहीं सकती। पेट की बात मुझ पर आती है, मैं उसे कह नहीं सकती।)<sup>३</sup>

इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि शोष्णता की गयी अपनी रूपरसि और मयनाओं में स्वरय एवं परिपूर्व है। बुल और मुन दोनों की सीमा पर लड़ी हुई यह आपका जीवन धर्म कटो हुए पिता रही है। उलझ करना स्वामिमान बिना नान-पना है, उलमा ही उलझ त्याग है। उलके बालिका, पुकरी, प्रीता और बुजा के विभिन्न रूप अपनी-अपनी सीमाओं में बूझ हैं। अन्त में परिद्वय हवापीमताद शिबेरी के शम्पों में लोष्णियों की 'एक-एक बहू के चित्रस पर रीतिकाल की लौ-लौ मुक्याएँ, लखिटाएँ

१ 'बुझा मोरे शिपक बरबिया, टिकुली देल जरि बजर

२ हमारा प्राम साहित्य पृष्ठ १४१

३ हमारा प्राम साहित्य पृष्ठ १४१

\* 'परकी माती है देवेग्न सारपानी, पृष्ठ १२१



मोती आई के बचवा काम्या  
 बाहू छो बचकरे की  
 कबोरे धाबूला म्हातरा मई मिरा से केबाले  
 मई मिरा की सावर राखी

साठी काम्य गाले की (उन्मैव विन्धे में प्रचलित)  
 बर्मदा उपत्यका के लोकगीत-साहित्य का विस्तार उत्तरेक्रीय है। सं  
 में हम उसे विन्न रूप में विभाजित कर सकते हैं—

प्रकृत गीत—कृष्णाक्षायी कथा, पण्डव कथा, अहिम्य क  
 चन्द्रहास, नरसी मैहता, मंजी पंवार (सु व पंवार), मिहला, काबल ए  
 दामामगत, पना बाव, नाम्नी, म्हातर, आदि।

सुकृत गीत—मरुती बेराग, मृसु गीत, सिंगा म्हात के गीत, गो  
 पन्द, लसाह के गीत, कबीरा, सुकती, क्पास, लमासू, पत्त-विरोप  
 उन्मन्धित गीत, शाबनियों, गरबी, पंवाके, नाकिनों के गीत, आदि।

स्त्रियों के गीत—होली, गद्यगौर, रद्याई, कर्म के गीत, विवाह  
 गीत, नाम महापक, स्तुति गीत, चन्द्रखी के मन्धन, मीरा की रूप वा  
 गीत, छंद, सप्त-महा के गीत, गौला, विदार्, गरबी के गीत, क्पास  
 गीत, आदि।

बन्धों के गीत—साला मंगनी (मास्तवा कृष्णा), गोमो, लंभा, डेर  
 माता, पतौव।

प्रकृत गीतों में मंजी पंवार याच नगर का सु व सम्बन्धी और कर्म  
 है। उनका गोड़ी से सुद-वर्षन विषय और अनेक घटनाओं से मुरु उ  
 प्रकृत प्रायः बरसात के दिनों में गाया जाता है जिसकी स्थायी रेक है—

घन रे सुरमा  
 घन खारी माता बुबारे  
 राखी को बापो पु बर  
 ज्यों बह देती माता जोसठ जोम्बी  
 भैरव की धालोबाल कपवा हिन्दु

'मिस्सना' गोपासक बातियों का गद्य-गीतात्मक प्रकृत है। एक न्यारी को महारेव की कृपा से मिस्सना नामक पुत्र प्राप्त हुआ था। उसके बचप से ही राजा के बगारे हीने हो गए। बालक मिस्सना का जीवन मुद्र से आरम्भ हुआ। वह मालवा तक में राजा मोरप्यार से लड़ा। अन्त में उरुषी कन्या से विवाह कर अपन कम-स्थान पर लौटा। गवली मारुड, गृधर आदि बातियों में मिस्सना का प्रचार बहुत है। गृधर 'हीरा' (हीर) भी गाते हैं। 'काकल रानी' का प्रचार भी शेष-प्रर्वणों के साथ निमाड़ में है। धार्मिक प्रकृतों में 'म्यास' मालवा की तरह समस्त उपत्यका में प्रचलित है।

इसमें उन्हेह नहीं कि नर्मदा-उपत्यका के जीवन में लोक-संगीत मह राह से समाया हुआ है। गाने का विम्वरय 'बसो आठो लगाने' कहकर दिया जाता है। चौपाछ अथवा हतार में मयदलियों का आठी है। 'आठो लगाने' से तात्पर्य मृदंग के एक ओर बोरा डुक्क करने के लिए आठो 'बोयने' से है। मृदंग के बचने से गीतों का सुकर होना सहज ही सम्भव हो जाता है। मृदंग के अतिरिक्त ढप, मूर्क और टोलक का प्रयोग गानक-संक्षिप्तों में किया जाता है। स्त्रियों बिना साथ के गाती हैं। क्योंकि उनके गीतों का सम्बन्ध रीति रिवाज से अधिक है, इतलिए वे परम्परावा भी अधिक होते हैं। उनमें टिकरूपन का लक्ष होता है।

नर्मदा-उपत्यका के मृत्यु-गीत विद्यय उल्लेखनीय हैं। आत्मा-परमात्मा के एकीकरण के यार्थ से लखरेव मृत्यु-गीत विद्ययी बोसी में 'मसास्या गीत' कहलाते हैं। मृत शरीर के पास बैठकर गानक-दल राह-संस्कार समाप्त होने तक इन्हीं गता रहता है। केवल युवा युवप अथवा लारी की मृत्यु पर उन्हें बही माया जाता। मृत्यु-गीत कष्टतः आत्मात्मिक, विद्यगी और सांसारिक लीक से अर उठने वाले यार्थ से समृद्ध हैं। उन्हें मृदंग के साथ समूहिक रूप से गाया जाता है। उदाहरणार्थ एक मृत्यु-गीत लीजिए—

आयो आयो रे परिश्र को

खरे मयदिया के कय

आखो आखो रे परिच्छ की

आखो म्हास सात की सई हाब

अरे अपख म्हाख्य आबं

अरे कई देवा मन्दिर सिद्धारी

आखो आखो रे परिच्छ की

आखो म्हास सात की सई होब

अरे अपख मामो गु बाबा

कई गु ध्या कई गु बभो

मोठिअब मांग पुराणा

आखो आखो रे परिच्छ की

आखो म्हास सात की सई होब

अरे कासी बाग अणार्ई

अंवा अमेजी होब मोमरा

अरे कासो बाग अणामो

आखो आखो रे परिच्छ की

आखो म्हास सात की सई होब

अरे कासी बोधी सिद्धारी

कई रे सीबा कई सीबबा

अरे देवा मांग अणामो

आखो आखो रे परिच्छ की

मुसु-गीतों के ऊपर मध्यकालीन छात्रों की छाप स्पष्ट है।

पम्बरी की शम्भुजी का प्रवेश इन गीतों में सम्भवतः १५वीं शताब्दी बाद हुआ। कबीर की छाप भी मुसु-गीतों में मिल जाती है, जिससे कबीर के माया-मोह से ऊपर उठे हुए व्यक्ति का लोक-जीवन पर प्रभाव

प्रकृत होता है।

उपत्यका में वृष्य प्रभाव उन्त सिगा का है। सिगाभी एक गवली के घर पैदा हुए थे। अपने गुरु से वैज्य की दीक्षा लेकर वे अपनी आयक वाकना से उच्च पुरुष हो गए। कहते हैं उन्त दुस्सीदास महेश्वर तहसील के निष्ठ पीपल्या ग्राम में सिगाभी से मिलने के लिए गये थे। शौलिया पीर भी सिगाभी से प्रभावित हुए। सिगाभी की मृत्यु खण्डवा के निष्ठ हुए। मर्मदा-उपत्यका के कुरखों में सिगाभी का प्रभाव बहुत है। उनकी लुत्ति में गाय जाने वाले गीतों के अतिरिक्त दहू और चम्पा भक्त भी कृप वाले गीत बहुत गाय करते हैं। स्वयं सिगाभी के बनाये हुए गीत भी कहीं-कहीं प्रचलित हैं। उन्का एक गीत है—

ऐसा घर कू सेबर्दा  
 जिन जय को जिबार्द  
 बड़वा मोपा सब कड़े  
 जिन उप छाई जगार्द  
 जिनका घर का मरी गया  
 का हू क्यों न जिबार्द ।  
 बात कड़े सो क्या भये  
 घातमा कब पाये  
 फिरता फिरता मरी गया  
 का भर बैकुचट पाये  
 तिराब कड़े सो क्या भये  
 असबाब कनाले  
 जे गर जल कू सेबता  
 का मगर क्यारे ।  
 जगन कोटि एक कब है  
 मित साइ जिमाये

का भर बैठुण्ड जाये ।

( तिरमय ऊँकार, बोध्या से प्राप्त )

नर्मदा-उपत्यका के संगीत में मारपी, म्यासम गरपी, हासनी और पकाड़ा श्री पुनें पुरुषों में उल्लेखनीय हैं । पुरुषों के गीत प्रमः सामूहिक या कैदकी होते हैं, जो 'परिमण्डे' में आयम्न होकर 'रौड़' या 'उड्डम' में आ जाते हैं । 'लापनी' और 'पकाड़े' का प्रमाण बामबेरु से और गरपी का सुबयल से उपत्यका में प्रसारित हुआ है । मन्थों में 'गच्छी', 'चौयासा' और 'इतह' के भन्नों की अलग अलग शरें हैं । सैंगड़ी रंगत, बड़ी रंगत, लुोवी रंगत, झाड़ी और कड़ी रंगतें अलग-अलग लोक-संगीत के माने की पहचान को स्पष्ट करती हैं । गरपी के भी विभिन्न प्रकार हैं किन्हीं चार पाई, दो पाई, डेढ़ पाई और एक पाई के बन्दों में बँधे जा सक्ता है ।

'किलगी-दुरा' का उल्लेख करना आवश्यक नहीं, क्योंकि यह छुट्टि परक सुन्द बीरुल को प्राप्त करने का एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें दो बच्चों की संगीतबद्ध सामुदायिक उत्सवें होती हैं । 'किलगी-दुरा' शक्ति के उपासक का बल होता है और 'दुय' शिव के । 'किलगी-दुरा' ऐतिहासिक व्यवस्था में किञ्चित्त हुआ वह संगीत है जो पक्षस्थान और मालवा तक में मिला है । उसे हमें लोक-संगीत से थोड़ा उच्च हुआ मानना चाहिए, क्योंकि लुवापी, अबर लखी, लितापी, पौतापी, बुर्गंग, मन्वसी, मड, मडतो, लिन्ती, पहलवीर, सन्त, घेट, पूहा, आदि सुन्द प्रकारों का प्रवेश उनके किञ्चित्त पर प्रवेश डाला है ।

नर्मदा-उपत्यका की उपासक अन्धी है । जमीन व अन्धी है और व भूरी, यद्यपि 'बहड़ी' और 'बहड़ी' उनके दो प्रकार प्राम्न हैं । लोयों के पास खेती के श्रीवार जुवाने टय के हैं । उपत्यका के बेल 'लोन अरते' होते हैं अर्थात् स्वर्ण और अने उद्रेद रंग की मिश्राकृत वाले । मिमाड़ी पुरुष उद्रेद रंग परम्न करता है । वह कुण्ड का 'भूक' पहन्ता है तथा सिर पर हास या पीली पगड़ी बाँधता है । सिन्धों पाणय और लुवाडा पहन्ती हैं । बस पर बाँधती पहन्ती हैं । कुहमी, मारुड, लखण, मडे,

महीर आदि भासियों की स्त्रियों 'कदा' लगती हैं। उन्हें हास रंग से विशेष भाव है। उनकी पठम्, गहने और कस्ती आ उपरोक्त गीतों में किये पदे हैं।

कर्मदा-उपत्यका नाटक-विषय के इतिहास में उपरोक्तनीच स्पष्ट है। उषी प्रकार अपने लोक-साहित्य, संगीत और लोक-नृत्यों में भी वह समृद्ध एवं परिपूर्ण है।

## मध्य-भारतीय मीलों के विवाह-गीत

मध्य माण्ड, लाकेश, शुबल, रामस्वाम और मध्यप्रदेश के कहीं कहीं पहाड़ों में बसने वाली आदिवासी जातियों में भी एक सादसी और अपने ढंग की मजबूत कोम है। अस्ता रंग, इच्छा शक्ति और कभी-कभी कठोर तथा हाथ में बज्र-बाण इन्हीं की ओर हैं। इन्हें अन्वेष नहीं कि वह जाति अत्यन्त प्राचीन है। महामाण्ड, उमापत्त, कवासरिस्तागर एवं अन्य भारतीय प्रन्थों में उपलब्ध 'मिथ्य' विषयक उल्लेख इन्हें क्वचर ही प्रमाणित करते हैं। कदापि कतिपय विद्वानों ने इन्हें शुक्र और सीरिक्त जाति के मिश्रण से बनी जाति बताया है, पर कवीप्रसन्न स्त्रियों से वह पारथा मिमू ल हो चुकी है।

भील जाति का उपजातियों में विभक्त है। अन्ध-विश्वासों और कर्मों से ग्रस्त होकर भी वह निर्मय, स्वामिमामिनी और बैर्-शीला है। इन्के विषय में विभिन्न किरोपलाओं का उल्लेख न करते हुए केवल विवाह एवं विवाह-गीत का ही यहाँ उल्लेख में परिषय किया जा रहा है।

### 'याव' (विवाह)

मीलों में तीन प्रकार के विवाह प्रचलित हैं—

(क) वर-पक्ष के लोग कन्या-पक्ष के यहाँ जाकर विवाह निमित्त करते

। वह ताशरय तथा प्रकृत स्वस्म है ।

गङ्गा

आ) दारिद्र्य के कारण, आर्थिक सामर्थ्य के अभाव में नर-सहित कुछ सकि भ्या के बर्षों बादें हैं तथा मामूली रीतियों को सम्पन्न करके उसे वीन क्ल (पोटरवा) पहनाकर नर-बधू दोनों को लिना शकते हैं । इसे 'गङ्गा' प्रथा कहते हैं ।

भगवद्

(५) तीसरी प्रथा 'भगवद् लेखो' कहलाती है । सङ्घ यदि सङ्घी को म्गाकर अपने घर से बाहर तो सङ्घी वाले 'भगवद्' लडा करते हैं । उस समय सङ्घे को पिठा सङ्घी वाले की माँगों को स्वीकार करके 'भगवद्' उमाप्त किया है । 'भगवद्' तोड़ने की क्रिया सङ्घे और सङ्घी के पिठा एक सङ्घी को रोमी और से पकड़कर उसे एक ही म्गके में तोड़कर व्यक्त करते हैं । इससे आपसी भगवद् उमाप्त समझ जाता है ।

यदि 'भगवद्' बुझने में सङ्घी की म्गाने वाला व्यक्ति तैयार नहीं होता है तो सम्पूहिक प्रथाओं से सङ्घे को सङ्घी का दूध पीने के लिए म्बधूर किया जाता है अर्थात् दूध पीकर वह सिद्ध करे कि किस सङ्घी को वह सत्ता है माँ के समान है । पर ऐसी स्थिति बहुत कम आती है । भगवद् उमाप्त करने के लिए जो 'रघु' माँगी जाती है वह 'विश्व' ( इश्वर ) कहलाती है । 'विश्व' देने पर भी स्तनपात्र के लिए व्यक्ति को म्बधूर किया जाता है बितते कि सङ्घी को किसी अन्य के साथ म्गाने पर औमार्थ्य की प्रमाण बना रहे । भगवद् तोड़ने की 'रघु' लेकर सङ्घी जाता, मप्स्य व्यक्तियों को 'मद' (शयन) विज्ञाता है और उस 'रघु' से सङ्घी के लिए आमुपय बनवा देता है ।

'सेङ्गा-देव' की पूजा

विवाह का आरम्भ 'सेङ्गा-देव' (माम के सीमावर्ती देवता) की पूजा से



होता है। यह पूजा सौम्य के समय बर और बभ्रु-पद्म के लोग अपने-अपने स्थानों पर 'मावकर' के हाथों से सम्पन्न करते हैं। पूजा में पद्म हुआ दलिया, चावल, 'आवली' (घूँड़ियों), टीकी, कपास की धौंड़ी तथा सिन्दूर आदि चढ़ाया जाता है। पूजा 'मावकर' जाति का पुरुष ही करता है, स्त्री नहीं। 'मावकर' ही मीलों में मिमत्रया देने से लगाकर अन्त्य उम्मी धर्म करता है, जो साधारण भारतीय समाज में बार को करना पड़ता है।

### मुर्गी की स्वीकृति

मिमत्रित मीलों को विवाह बाँसों परों में मुर्गी किलाह जाती है। मील और मित्रास्ता दोनों का मिश्रण ही कि मुर्गे आबवा मुर्गी को उनकी स्वीकृति के बिना नहीं आबते। आबने के पूर्व उनके मापे पर पानी की धार डाली जाती है। पानी को हटाने के लिए मुर्गा आबवा मुर्गी स्वामात्रिक कप से अपनी गरदन हिलाते हैं। गरदन का यह स्वभाषात व्यापार ही मीलों के लिए स्वीकृति का संकेत है। उसे 'हौं' समझकर वे प्रसन्नतापूर्वक 'रपौं' से गरदन पर धार करते हैं।

### देवत' (दावत)

देवाह करवाने के लिए इनमें मावियों की आभरणकटा बहीं। 'गिर मी' तथा 'बिक्त' (बाक्त) से विवाह आरम्भ होता है। उतमें बिचकी गैर शरण की व्यवस्था की जाती है। यों विवाह के पूरा लड़के और लड़की को किसी हस्त-बाजार में एक-दूसरे से पहचानवा दिया जाता है। ज्यों और से पत्थरी को अवश्य महज दिया जाता है। छुट्ट रम्ये हौं मी बहीं निकालता। दोनों पक्ष के लोग जो दिन विनिश्चय कर लें ही दिन छुट्ट मान लिया जाता है।

मीलों में एक ही योज में विवाह धर्म है। 'आता-आता' एक योज में मन्म है। भिलासों में जो 'बाउवा' गीत के होते हैं वे 'माववा' आबते हैं। बर-पद्म के लोग बरत से आते समय 'धौंड़' पर आर रसकर



X ग रे ग रे ग धे न नी ५	• रे सा सा ध तु म डी ना	X रे ग रे सा ध न सा ५	ग नी
X ग रे सा हो ल म्बी	• म रे सा ना ड नी	X सा ध — तुम डी ५	• ग — हो ५

नीचे कुछ गति दिये जा रहे हैं, जो बापगुरु ( म मा० ) के काल पास के गीतों में प्रचलित हैं। माया की दृष्टि से इन गीतों की माया सरदारपुर ( म० मा ) के काले कुम्भी-समाकर के बापे में बोली जाने वाली एक शास्त्री भीली है जिसे डॉ. क्लियर्सन ने 'सिन्थिस्टिक छन्द' के नाम से भीलों का केन्द्र-स्थल मानकर मान्यता दी है।

### गीत

( 'गिरछरी' के समय तुम्ही के समय नृत्य के साथ गाया जाने वाला गीत )

बैरछी<sup>१</sup> तुमही<sup>२</sup> ना चबछा बीज  
हो लम्बी नाक नी तुमही—हो ५  
धर छिपो बापने जिबाछ<sup>३</sup> को हाथ  
हो लम्बी नाक नी तुमही—हो ५  
पाके कपधो म्भार किजाबार पो हाथ  
हो लम्बी नाक नी तुमही—हो ५  
चबछी तुमही ना चबछा बीज

तुमही का अर्थसेल कथपि निरर्थक है, किन्तु आदिवासीयों के गीतों में से निरर्थक प्रयोग कुनों को उदाहर देते हैं।

सफेद

तुमही

१. गुरचरिजा

कबाख की पोरी<sup>१</sup> के मारी गळे  
 ग्हासी परनी मन प  
 लमी गाघो—लमी पोघो  
 लमी बीम खेब भीखा भरवार<sup>२</sup>  
 नखरो मठ करा हो—करा  
 लमखो<sup>३</sup> मठ करो हो—करी  
 लमी पैयो लमारा बालूपा<sup>४</sup> पोरो  
 हम पैपी हो कबाखन बाई ।

× × ×

कूप्य कड़ेपो बैटा गादूके<sup>५</sup> बैनो<sup>६</sup> हो  
 माय कड़ेपो बैटा गोदूके बैया हा  
 सौं एक बैटो खावखो—गोदूके बसो गोपी  
 बैनू<sup>७</sup> कड़ेपो बैटा गोदूके बैपी गेवा ।

× × ×

घो ग्हासी सारू<sup>८</sup> घो नुमस्वो<sup>९</sup> जमरू  
 बकी हमारी रामी रामी—हा  
 नुमस्वो दिपाणी खीखपी<sup>१०</sup> —हा

- 
- १ खड़की  
 २ मिपठम  
 ३ मनबल  
 ४ खड़के-बाई  
 ५ गुदुकी  
 ६ बैटो  
 ७ बहन  
 ८ सहेली  
 ९ छुँह दिपाने बाबा  
 १० बोपी

कबाख धरे मैखो खीखड़ी—हो  
 हमरू वरू<sup>१</sup> खरू पाखो—खीखड़ी हो  
 माई बई का गखा पदूया<sup>२</sup>  
 यन्वा कबाख धरे मैखो—खीखड़ी हो  
 सासू कर गखा पदूया  
 सरख खरू पाखो—खीखड़ी हो  
 धो मरके खोमे—खीखड़ी हो ।  
 ×      ×      ×  
 माखयो<sup>३</sup> गोखरू गोखो<sup>४</sup>  
 खरू<sup>५</sup> मारूखो खीरखो<sup>६</sup>  
 काखा सा खैल माली खार  
 खगो—खारखी ६ ६ ।

×      ×      ×  
 काखो खोखो हो—खार रँग्या परू<sup>७</sup>  
 खीखी<sup>८</sup> खखी दि हो राखखा—खारखी खोखी  
 पाखी परू दि हो राखखा—खारखो खोखी  
 खमाखार को खोखो—खैखार को खोखो  
 काखो खोखी हो—खारखो खोखी<sup>९</sup> ।

- १ सरख  
 २ गखे खैठ गप  
 ३ खैखर  
 ४ गोखो  
 ५ पाखर  
 ६ खिखिया  
 ७ रगे पाख  
 ८ खखी

९ गीत माघखेत्र-पर्यटन के समय (१९२१) खैखर द्वारा सङ्कलित  
 क्रिये गप है

## धुमन्तु कजरी के लोकगीत

## परिचय

भारतवर्ष में ऐसी अनेक जातियाँ हैं जिनके इतिहास की कड़ियाँ भीते हुए समय की महाराज में कहीं छुट हो गई हैं। ऐसी स्थिति में इन्तज्ज्वाएँ अथवा पञ्चमस्य मौरिक साहित्य एवं रीति रियाजों के सहारे उनके विभिन्न सम्पत्तों को कहीं-कहीं बोझकर अनुमानित निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए किट्ठी उठाव्यी से ही प्रयास चल रहे हैं। वे जातियाँ, जिनका इतिहास आज संरिख है एवं जिनमें क्व विभिन्न क्वाओं और प्रवृत्तियों का प्रचलन है, समाज-शास्त्रियों तथा भूतत्वविदों के लिए दिनेय अप्यपन की साम्नी बन गई हैं। छुट इतिहास के गर्भ में किट्ठी क्वाओं से जिन जातियों का सम्पर्क करने स्थान से छुट गया है अथवा जिनकी बीजिध के लक्षण बह हो गए हैं वे अमराः अराजक्यावारी यिरोहों के रूप में बगह बगह छिजने लगी। पठिस्थितियों में परिवर्तन न होने से उनमें थोटी, उकैती, लुट्मार आदि अपरापी प्रवृत्तियों का समावेश हो गया। माखीय शासन की जाति-सूची में ऐसी जातियों को अराजक्यावारी थोत्रिथ किया गया।

अपमनेरा जातियों समूचे माखीय में पाह जाती हैं। अनेके मप्य-क्वीं भारत में बंबारे, साधिये, मोधिये, सौठी, मीना, बंडर, आदि छिजनी ही ऐसी जातियाँ हैं जिनका अिन अतरलाक प्रवृत्तियों से मय है।

कंठर इनमें सबसे अधिक अपराधी प्रवृत्तियों वाली जाति है जो ठर माण्ड में आज भी स्थान-स्थान पर बूझती पार्स जाती है। अपराध कर्मों का मूपाय है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि स्त्रियों मुगलान्तिवें जैसे बस्त्र पहनती हैं और पुरुष मध्यकाली भारतीय प्रामाण्यी जैसे। यह जाति बपों से पुमन्तु बीकन स्थिति कर रही है और आज पिछले कुछ वर्षों से गोंबी के पास स्वामी डेरे डासकर बसने का प्रवृत्त कर रही है। ऐसे डेरों पर शासन की कड़ी निगाह रहती है। डेरों की बसाकट अस्वामी रूप से लो हुए फिती गोंब से कम नहीं होती।

कंठर राजस्थान, मेवाड़, मध्य प्रदेश आदि भागों में विशेष रूप से मिलते हैं। इसका कारण स्पष्ट रूप से यही है कि इसका सम्बन्ध मेवाड़ राजस्थान से बाहर नहीं है। इनके अनुसार सूबरी क से मंगत हैं। प्रायः वन्दकमात्रों से प्रकृत है कि बगड़ाकट सूबरी के मासदा में जाने पर उनके साथ वे लोग भी चले जाए। यद्यपि इनके लोग राजपूतों से मिलते हैं, तथापि इनका पचा सूबरी के यहाँ टोलाक बचाकर गाना और शारीरिक करतन दिखाना-मात्र था। इससे यह भी अनुमान लगाया जाता है कि राजपूतों में परम्परा से प्रचलित किलाखिता के कमी से शिष्य हुए और फिर उन्हीं के रक्त से अपना सम्बन्ध प्रकृत करने में वे अपना गौरव समझने लगे। जो हो, आज यह जाति अपराधी है; शारीरिक करतन दिखाने का केवल नाम-मात्र के लिए इसमें शोष है।

शासन की दृष्टि में जा जाने के पश्चात् इस जाति का शोषण प्रारम्भ हुआ। यद्यपि शासन ने इसे पिछले कई वर्षों पूर्व बजाने का प्रकृत किया था, तथापि शेष और तर्क होने के कारण फिती भी प्रायः शरकर ने इस निवार को गम्भीरतापूर्वक अर्थात्कृत करने में शोष नहीं दिया। ऐसी स्थिति में छोटी रिजालतों और डिब्बनों ने इसे अपनी-अपनी सीमा में बसने-मात्र की सुविधाएँ दीं जो कि आन्तरिक रूप से इस वर्ग पर भी कि वे अपनी सीमा के बाहर चोरी करें या हर्षें, पर जो कुछ हस्तगत करें उसमें कुछ माग उन्हें भी प्रदान करती रहीं। अतः अप्रत्याश रूप से शासन

वे ही इस जाति की अपरानी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया।

कजरी के गीत

कजरी के गीतों और नृत्यों में वे सभी प्रवृत्तियाँ, प्रथाएँ, विवाह और संस्कार परिलक्षित होते हैं जिसका बीजन से नित्य का सम्बन्ध है। छोटे मोटे यानेदाएँ और कोतवाली द्वारा उन्हें बैठा कर दिया जाता है, इतना संकेत विवाह के एक गीत में देखिय—

‘बेना’

कहाँ बाल्या रे राई<sup>१</sup> देवा  
 कलकलारी<sup>२</sup> दुपार्या में—कहाँ बाल्या रे  
 छारा दादा का छेक्या कागद म्हार आया रे  
 व्हाता काका रा छेक्या कागद म्हार आया रे  
 व्हाता मामा रा छेक्या कागद म्हार आया रे  
 व्हाता मामा बीरा रा छेक्या कागद म्हार आया रे  
 चीरे बोख प बाखक बेनही<sup>३</sup>—बीरे बोख  
 सिन्दरसी को पालदार मुने डंड छेसी रे  
 सिन्दरसी का मुम्मी मुने डंड छेसी रे  
 साजदार को कोतवाल मुने डंड छेसी रे  
 चीरे बोख प बाखक बेनही—बीरे बोख

(कहाँ पले रे राय बट, इत कलकलारी इर (ठिब) दुपार्या में कहीं पले रे ! तेरे दादा का छेक्या हुआ पत्र आया या, तेरे काका का छेक्या हुआ पत्र मुझे आया या, तेरे मामा का छेक्या हुआ पत्र मुझे आया या, तेरे बड़े भाई का छेक्या हुआ पत्र मुझे आया या ! चीरे बोख प बाखक

१ राय

२ ठिब

३ बवा

४ बचपों, बुद्धन



हुलाहल भीरे बोलत; सुन्दरली का मानेदार सुनेगा तो दंड लेया, सुन्दरली सुन्यी सुनेगा तो दंड लेगा, शाबापुर का श्वेतबाल सुनेया तो दंड ले भीरे बोल प बासक हुलाहल भीरे बोल ! )

उक्त गीत मध्य माण्ड के शाबापुर विधे के ग्राम सुन्दरली से प्रकिया गया है। सुन्दरली में एक बाला है जहाँ प्रखिलित गीत वर्ष से जा उम्र वाले कंधरों को रोक दिवा जाता है, जिससे ब्राह्मण क्विणी प्रकर बाटदात न होने पाए। प्रतः छुः बने छबभे छोड़ दिया जाता है। निरक के लिए दंड लेने का संकेत कंधरों के बीच से ही गीत में प्रकटा हुआ है। दूसरा गीत है जिसमें क्विणी अन्य देरे का वृद्धा प्रकर हुलाहल को ग्याह से जाता है। गीत विदाह के समय गाया जाता है।

### ‘बूला री सोमा’

ये दू तो बूला री सोमा से गयो रे जाता  
परम पर जाक्यो रे जाता  
ये दू तो केरा री सोमा से जक्यो रे जाता  
ये दू तो पर की री सोमा से जक्यो रे जाता  
परम पर जाक्यो रे जाता  
ये खाता माथल<sup>१</sup> तो मजहो हरक्यो  
ये खारा बाधकियारी<sup>२</sup> मजहो हरक्यो<sup>३</sup>  
ये दू तो रोमा री सोमा से जाक्यो रे जाता  
परम पर जाक्यो रे जाता

बूहदे को सम्बोधित करके स्त्रियों गाती हैं कि दू बूला भी सोमा से जा रहा है, दू हमारे देरे भी, हमारे पर की सोमा से जा रहा है। देरी माण्ड

१ बूला

२ माता

३ पिता

४ हर्षित हुआ है।

थवा ठेरे पिया अब मन इफिड हुआ है, पर तू हमारी रोती की रोम रो नशा है; तू बिबाह करके अपने घर जा रहा है।)

दोषों के पीछों में दारू (शराब) और बच्चे को बड़ा महत्व दिया गया है। वास्तविक जीवन में दारू बचपन का टैलिक पेन ही बन गई है। बचपन-बचपनी और सुनिर्मों तो ये वास्तव ही हैं। शराब के साथ मांस का सम्बन्ध स्वाभाविक है। अतः बच्चा बचपन जैसे लूट लुटती है। अलासी की दुकान, अलासन (मन बेचन वाली), धाति यीलों के उत्पादन हैं जो अविवाह्य बचपन-नीलों में उपलब्ध हैं। एक दारू सम्बन्धी गीत है—

‘दारू’

बादल<sup>१</sup> भर साधो रे बेना खारी ज्वाला पीये  
 घोड़ी-घोड़ी<sup>२</sup> गाछ खोड़ो रे बेना खारा सुकला<sup>३</sup> पीये  
 झरती-सी भर साध<sup>४</sup> रे बेना खारी खदमब<sup>५</sup> पीये  
 खारी कुसड़ी<sup>६</sup> पीये  
 बादल भर साध रे बेना खारी ज्वाला पीये

(दे बूढ़े, प्यासे भर साधो (दारू के), ठेपी प्रियतमा पीने की इच्छुक है। (शराब के लिए) मरती नासिबों खुदाओ कि तरे थोड़े पी लके। दे बूढ़े, अपनी साड़ी (कुसहन) के लिए भापी भर साधो, वह पीने की इच्छुक है। दे बूढ़े, अपनी प्रियतमा के लिए प्यासे भर साधो।)

एक बूढ़े गीत में बालम म<sup>७</sup> के घर में स्थान-स्थान पर लिखना रहा

- १ प्यासा
- २ प्रियतमा
- ३ गहरी
- ४ बंते
- ५ साधो
- ६ साड़ी
- ७ कुसहन

है। वह अपने मनोऽनुसक्त कस्तु यहाँ भी देखता है वहाँ रीम श्रव्य है।  
 कसासी की दूधन पर दास, मोषी की दूधन पर मोचिन, गुजर के यहाँ  
 बकुरा, सुनार के यहाँ हैंसुली ( गले का आभूषण ), उम्पुछ में प्रियठमा,  
 पर्याय और बनड़ी की पाल, तथा कुमार की यक्षियों में चौरियों देखकर  
 वह रीम का छा है। सम्पूर्ण गीत है—

‘बेनड़ी’

कसासारी गखिया बिछम रिपो बैनको  
 रीम गयो म्हराज रीम गयो बैनको  
 अब तो त्हारी दास पियारी जागे बैनका  
 मोषीरा री गखिया बिछम रिपो बैनको  
 मोषीची देख रीम गयो म्हराज बैना  
 अब तो त्हारी मोषी पियारी जागे बैनका  
 गुजरा के गखिया बिछम ग्यो बैनको  
 बोकरो देख रीम ग्या म्हराज बैना  
 अब तो त्हारी बोकरो पियारी जागे बैनका  
 सुनारा री गखिया बिछम ग्यो बैनको  
 हैंसुली बैली रीम ग्या म्हराज बैना  
 अब तो त्हारी हैंसुली पियारी जागे बैनका  
 सुसाराची गखिया बिछम ग्या बैनको  
 डोहयियो<sup>१</sup> देख रीम ग्यो बैनको  
 अब तो त्हारा डोहयो<sup>२</sup> पियारी जागे बैनका  
 कुमारा री गखिया बिछम ग्यो बैनको  
 चोरिबा<sup>३</sup> देखी रीम ग्यो म्हराज बैना

१ प्रियठमा

२ पक्षग

३ मंडप की चौरिया

अब तो धारी बोरी पिपारी खतो बेगवा।

कंबरों की वैवाहिक प्रथाएँ हिन्दुओं से प्रभावित हैं। विवाह के अवसर पर परिवार के स्वाम पर वृद्धों की बुझा ही इस्तमिलन करती है। गण्ड झट्टी है; वृद्धा वार्य्य माछा है। उसी समय अब एक गीत है जो दुसरन पक्ष की ओर से गाया जाता है—

‘तारण’

छेरचो<sup>१</sup> ठाय रे गुमाविरा<sup>२</sup> छेरचो ठाय रे  
 म्हाती बाभूबन्द लूबख<sup>३</sup> ए कडी मेखो मखियो<sup>४</sup>  
 बीबखी का खखके<sup>५</sup> म खग जावगारे

छेरचो ठाय रे गुमाविरा

(हे छमान मने, सहरिया-खान रे। मेरी लिए लूम वाले बाभूबन्द और मखियो से खदित करती प्रदान कर। बिबखी की चमक से मुझे राग जाने अब डर है; सहरिया खान रे।)

कंबरों के अनेक गीतों में प्रथाओं का उल्लेख तो है ही, पर ऐसे कर स्फुट गीत हैं जिनमें उनके उत्साह, पग हप और इतिहास की साम्प्रदायिकता और बोध के विषय पूरा की अभिव्यक्ति निहित है। कंबरों का उत्कृष्ट अनेक गीतों में है। बगदाकत पूरक ‘मोबा’ और उसकी मातों का बर्णन कर गीतों में मिलता है। कंबरों के लय-राम्य ‘हीर’ की कथाएँ तब ही हप गीतों से रच्य जाती हैं। ‘बिबोरी’ कंबरों की ऐसी कविता है जिसके पाये के अपने को बताने में वे यौवव अनुभव करते हैं। नखरगढ़ के राजा ने उनके साथ बोरा किता और बह मात करती गर। गीतों में

१ सहरिया

२ गुमान मने

३ ऊँचे पात्रा बाबू का चामूपय

४ मखियों से खदित करती

५ खखक, चमक

बिबोती को याद इसी घटना के साथ सम्बन्धित है। इसका मूलरूप के  
 पसा के हाथ से दान लेना ठीक नहीं समझते। उनके लिए बगदाबुठ  
 एबरो के हाथ का दान ही ब्येष्ट है। बिबोती के एक बड़े गीत में यह  
 प्रकार भी बड़े दर्द के साथ गाया जाता है—

नी क्यों त्वारा हाथ को दान राजा

वे डोस्तों रे बीबीस बगदाबुठ त्वारा हाथ को दान

# १७

## ‘शाजावऊ’

पत्नी के विभिन्न स्थायी के लोक-किराती श्री वृष्ट्युमि में मानव के  
 मूल कर्मन्व और सामूहिक अनुभूति के सामान्य व्यव निहित हैं। लोक-  
 तों में प्राप्त मातृ श्री लोक्यिन पुनी के उहारे जो अभिम्पकि पण्यरत्नक  
 न में आत्र श्री पत्नी आ रही है, उसमें मने ही सपुत्रम सत्य ( कर्हि-  
 र्ही ) हो, पर नए एकम असत्य नहीं है।

अनेक माण्डीय लोकगीत पीठि-रिबाओं, चार्मिक अनुष्ठानों, येने  
 येण्डों, अन्य किरातों एवं अन्य प्रयाशों के साथ जुड़े हैं तथा उन्हीं के  
 किन्ना-म्पापों के साथ गले बाले हैं। यद्यपि इत प्रकार के गीतों में अभिन्य  
 ही रण-सुम्बन्धी परिवर्तन का होना स्वाम्भविष्ठ है, तथापि उनके मूल  
 रंगीत एवं मूल मातृ में किरात के स्थायी एत नए नहीं हो पते। इस  
 दृष्टि से गीतों का येय-साय एवं उनकी अभिम्पकि-शैली लोकवाता-साहित्य  
 में किटोय महत्त्व रखते हैं।

माण्डीय लोकगीत दिग्नी लोक-वर्ता-साहित्य के उपयोगी एत हैं।  
 उनमें निहित विराय लक्ष्य, उपादान, वैरा-अलगत बखन और मिसी  
 कुली संस्कृति का चित्र समी साविगत मनोमातृ के उद्घाटन में तहानक  
 विद्व होते हैं। ‘शाजावऊ’ ( शाजावडू ) नामक मासवी-गीत इही उद्देश्य  
 से आगामी पंक्तिों में प्रस्तुत किया जा रहा है।

'बासावळ' का गीत मासवा में मुख्य रूप से मध्यमवर्ग के शाबासुर, देवास और उम्बैन किले के चोंचों में गाया जाता है। आषाढ़ में वर्षा होने में विश्वास होता देख खिन्नों इसे मध्य-रात्रि के पूर्व एकत्र होकर अक्षय-रत में गाती हैं। गीत के सम्बन्ध में यह किरवास्त है कि उसके गाने पर शीघ्र ही वर्षा आरम्भ हो जाती है। इस विश्वास के पीछे आंशिक रूप से एक लम्बे पटना का उल्लेख किया जाता है। शाबासुर किले के ग्राम सुन्दरली के निकट एक तालाब है जिसे 'बासावळा' का तालाब अथवा 'बासोण' (ग्राम का नाम) का तालाब कहते हैं। कहा जाता है कि जब बरत तालाब खुदवाया गया तो उसमें बल नहीं आया। वह सूखा ही रहा। एक बासव-पुत्र के स्वप्न पर उसमें एक डेरे-बहु की बलि दी गई और आश्चर्य की बात है कि उसके बाद ही उसमें बल हिलोरे लेने लगा।

इसके साथ ही हमें एक गीत की जानकारी और मिलती है। मन्मथवर्ग के निमाड़ी किले के सेगाँव तहसील में सरयुज विरहा नामक ग्राम है। वहाँ ६ ७ मील के घेरे में पानी से भरपूर हुआ एक तालाब है। इस तालाब के नेमाँच की कहानी 'बासावळ' की कहानी से काफी विचित्र है। निमाड़ी में गणकित 'कुलकर्णी बहु' का गीत प्रायः खिन्नों गाया जाती है।

कहते हैं विरहा ग्राम के विचित्र पानी का प्रायः अभाव रहा जाता था। वहाँ तालाब है वहाँ किसी समय एक बावड़ी की बिलमें बहुत कम पानी रखा था। पूर्ण कि आषाढ के प्रारंभ में पानी का प्रबन्ध नहीं था इसलिए प्रायः लोग सिमरकर उस बावड़ी पर एकत्र हो जाया करते थे। मीढ़-भर और बल की कमी से जो मझाके पचपट्ट पर हुआ करते हैं, बैठे ही मझाके वहाँ भी होते रहते थे। एक दिन रात्रि का पेटले ऐसे ही दरम को देखकर बड़ा चिन्तित हुआ। उसने उठी रात स्वप्न देखा कि देवी कह रही है कि यदि वह अपने पुत्र और पुत्रवधू को बावड़ी में उमरा दे तो बल का बह बुर हो जायगा। प्रातःकाल पेटले ने यह बात अपने डेरे-बहु से कही। दोनों तत्काल तैयार हो गए और पूजा-पाठ करने के पश्चात् बावड़ी में उतर गए। उनके उमरा ही चारों ओर बल-ही-बल हो गया। इस प्रकार बावड़ी

एक बड़ा तासाव बन गए। इस कथा में अन्तिम बात यह भी कही गई है कि कृष्ण के प्रस्थान से पहले प्रतिदिन तासाव के किनारे बालक मोक्षम मौक्या को बत भी उठाए पर दो चूड़ियों वाले हाथ मोक्षम की यात्री लेकर प्रसन्न हो वापस आते थे।

यह अक्षय ही किसी बलि की कहानी का सुपङ्ग रूप है।

प्राथमिक जातिधर्मों में कथा के लिए बिना आचरणों का बर्णन हमें उल्टे ही उल्टे बलि का विरोध महसूस है। सामाजिक सम्प्रदाय में यह प्रकृति एक अक्षय की भीति विद्यमान है। 'वासावक' के गीत में बलि की यह कहानी अक्षय की घटना से अलग बह गई है। इसका अक्षय है कि कुर्से, वाकरी आदि से बलि का सम्बन्ध भारतीय लोक-वार्ता का एक अंग था है। (यह भी दृष्टा उसे आब तक विद्यमान हुए है। लेख में प्रस्तुत 'वासावक' व की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

माखवा में राजा छोड़' थे। उनकी रानी छोड़नी मयुराक्षय की थी।

माखवा में कुर्से के समीप क्षेत्र में पानी देने के लिए बगार्ड जाने वाली मिट्टी की घोर को भी 'घोड़' कहते हैं। अब से सम्बन्धित होने के लिये 'घोड़' नाम कमजोर प्रतीत होता है। 'घोड़' एक जाति की है जो माखवा की है। जैसे घोड़ राजा का कोई उल्लेख माखवा के इतिहास में नहीं मिलता। गुजरात में बसमा घोड़न की एक कथा प्रचलित है जिसे १२वीं शताब्दी के गुजरात के राजा सिद्धराज के उसके रूप की बर्णना मुनकर अपने राज्य में बाबाय नुरवाने के लिए सम्बन्धित किया था। सिद्धराज के उसे प्रसन्न करने के लिए अपने प्रथम शिष्य, पर बसमा अपने सत से दिगी नहीं। सम्भवतः बसमा घोड़न और उसके द्वारा बाबाय नुरवाने की कथा का प्रस्तुत बाबाय के प्रसन्न से सहज ही बहकर 'राजा घोड़' का यहाँ अक्षयिक अर्थवाच हो गया है। माखवा में पञ्चिमीय जातिधर्मों का सम्बन्ध गुजरात की घोर से ही हुआ है यथा गुजराती लोकवाच्य का माखवा और निम्न में प्रचलित लोक-



एक छत्र छोड़ छोड़नी बातोंसु प्राम की ओर आए। रानी ने कुँए-बावड़ी बुदबाध और राजा ने एक ताताप। रानी के कुँए-बावड़ी बस से मर मर पर ताताप में बस नहीं आया। बाबाय का पुत्र बुलाया गया। उसने अपने पोथी-पत्र में देखकर कहा, "राजा, कुँए ठीक कहा नहीं जाता, यहाँ कुँए से रहा नहीं जाता, सरोवर थापके बड़े बेटे बहु का मोम मॉगवा है।"

राजा की आँखों में बलमस्त भीर आ गया। बाबर अपने अपने छोटे पुत्र हसकु बर से यह बात कही। पुत्र के कहने पर वह अपनी बहु के पीहर गये। बाबायहू ने बल गरम करवाया और ठठम भोजन तैयार किया। राजा ने उन्हें स्वीकार न करते हुए ताताप के भोग की बात कवाई। बाबायहू तैयार होकर उलुपल आइ। गाँव में बुलाया दिया गया। पीछे पुत्रवा, बाबायहू और बनील बन्नादि भाएय कर दोनों ने श्रद्धार किया। इस प्रकार तैयार होकर दोनों सरोवर पर आए।

बाबायहू-ईलकु बर कौ-कौ सरोवर की एक-एक पेड़ी पर पैर रखते कौ-कौ कठमें बस बड़वा जाता। बस बाबायहू के बेश कूने लया। कलसी की पर चरय रखते ही बस बाबायहू की देखी तक आ गया। उसने कहा—“कलसी, इस ओर मुँह फेरो, सरोवर हिचोरे से रहा है।”

आँखों में भीर मलकर शबहु छोड़ ने कहा—“मेरी बाबायहू, बस शहारे बड़े तक आ गया, अपने हाथ समेवो।”

आखीबाई बेटे हुए बाबायहू हसकु बर बस में उमा गए।

सि निम्नलिखित है—

गलायक

राजा कौन से आवा होई छोड़-ओड़नी

बहु ओ मभरा स आया ओड़नी

कोई आरचन का विषय नहीं है। (कसमा-ओड़-सम्बन्धी बीच गुजरत विधा समा कहमहाबाहू द्वारा प्रकाशित कसमाबा में देखिए।)

राजा माझबा से आया सी भोज  
 कौं उतरा राजा भोजने  
 राजा कौं उतरा राजी भोजनी  
 मेर्की<sup>१</sup> उतरा राजा भोजने  
 राजा कचहरी<sup>२</sup> उतरा राजी भोजनी  
 कौं विमादा राजा भोजने  
 राजा कौं विमादा राजी भोजनी  
 लिचड़ी विमादा राजा भोजने  
 राजा छापसी<sup>३</sup> विमादा राजी भोजनी  
 बीसा<sup>४</sup> कोदावपा कूचा-बावकी  
 राजा सभरा पौधापा<sup>५</sup> समस्त लकाव  
 कूचा<sup>६</sup> के बावकी राजा उगाकी<sup>७</sup> र्पा  
 राजा सुकून पक्षी समस्त लकाव  
 तैकी-तैकी<sup>८</sup> के बामय की बावकी<sup>९</sup>

१ महल

२ कचहरी

३ भोजन कराएँ

४ एक प्रकार का तरह पकवाव

५ राजी भोजनी के लिए प्रयुक्त (राजस्थानी-भाषा की का आर-सूचक प्रयोग)

६ सुदबावा

७ समुद्र के समस्त लकाव

८ उगाव रहे हैं

९ सूत्रा

१० पुधापी

११ बुव

अर्थों<sup>१</sup> सरवर को मोरल देखावो  
 पोधी बौंके हो बामब माचो पेरे  
 राजा कर्हू तो कहुयो नी जाय  
 राजा बेचौं में घापा बजमब नीर  
 को ती सौंवी रे कर्हू हो बामब  
 कर्हू वा सौंवी राजा, कहुयो नी जाय  
 राजा बड़ा बैरा-बक को सौंगे सरवर भोग  
 हूँ<sup>२</sup> तने पूरूँ म्हारा इस्तु बर बैरा  
 सरवर सौंगे त्मारो भोग रे  
 हूँ पा नी बाख म्हारा नी सा<sup>३</sup>  
 जीसा त्मारा बाखानक वे कर्हूकर पूजो  
 बोखा बोधा धो ससरामी बीख कस्वा  
 राजा इन तो उये बाखानक का बैस  
 तावा<sup>४</sup> रे पाखी बाखानक मेखियो  
 ससरामी होई त्मारी म्हामारी बैख  
 कना<sup>५</sup> वे भोजन ससरामी ठंडा हुवा  
 ससरामी होई त्मारी बीमचारी बैख<sup>६</sup>  
 हूँ तो भी म्हाई म्हासी बाखानक  
 बाखानक कर्हू वा कहुयो नी जाय  
 हूँ भी बीमू म्हारी बाखानक  
 बाखानक, कर्हू तो कहुयो नी जाय

- 
- १ इय  
 २ में  
 ३ वहाँ पिठा के अर्थ में प्रयोग  
 ४ गरम  
 ५ तावा, गरम  
 ६ भोजन का समय

के लो सारी धो राखा कइ दीखो  
 ससराबी कोणा सार्ह कइयो मनीया  
 कौणा<sup>१</sup> लो सारी धो बाबाबड  
 बाबाबड सरबर मोगे तमारो भोग  
 हूँ या बी बाणूँ म्दारा ससराबी  
 ससराबी तमारा बेदा से जाय पूखो  
 भागे ससराबी पाणूँ बाबाबड  
 राखा, बल लो जगे सासरे बैस

× × ×

ससराबी वैषो-वैषो माषी रो पूल  
 राखा बपरी में वैषो देबाको  
 ससराबी बरबा<sup>२</sup> ठनापणी मेको जी  
 ससराबी बाबाबड हंसकु बर म्दुदिया जी<sup>३</sup>  
 ससराबी हूँ<sup>४</sup> बगध्या<sup>५</sup> बापदा  
 ससराबी बाबाबड हंसकु बर परतबोबी  
 ससराबी बाबा<sup>६</sup> रो मधो<sup>७</sup> मगाइ जो  
 ससराबी बाबाबड हंसकु बर पैराबोबी  
 ससराबी कु बारी केपी<sup>८</sup> का गाबर मगाइ जा

- 
- १ कहुँगा  
 २ हडा  
 ३ स्नाय म्दिया  
 ४ बिकात्रो  
 ५ समुक  
 ६ दिरवा  
 ७ पइमे  
 ८ गाय की बइडी

ससराजी डक<sup>१</sup> दई धौंगखो बिपाइ जो  
 ससराजी, गड-मौल्या को लोक पुराखी  
 ससराजी, ऊपर बाबोख्यो<sup>२</sup> मिजाइ जो  
 ससराजी बाबाखक हंसकु वर बेडाइ जो

× × ×

आगे-आलो हंसकु वर पाखे बाबाखक  
 राजा, बेके पाखे नयरी का खोग  
 राजा, अई कबा<sup>३</sup> सरवर पाख  
 पैखी पैखी ओ हंसकु वर बाबाखक पपवरवा  
 राजा, अंगूका पै आखो यो नीर  
 तीसरी पैखी ओ बाबाखक हंसकु वर पगवर वा  
 राजा योका पै आखो जो नीर  
 आरमी पैखी ओ बाबाखक हंसकु वर पपवरवा  
 राजा, कम्मर पे आखो नीर  
 पाँचमी पैखी ओ बाबाखक हंसकु वर पपवरवा  
 राजा काली पै आखी जो नीर  
 छठमी पैखी ओ बाबाखक हंसकु वर पगवर वा  
 राजा कौवा<sup>४</sup> पै आखो जो नीर  
 सातमी पैखी ओ बाबाखक हंसकु वर पपवरवा  
 राजा जोदी<sup>५</sup> पे आखो यो नीर  
 पीठ केरी वे ससराजी, कई हाथ जोषी

१ पोखर

२ आत्मग

३ बा कबे हुए

४ कम्पा

५ बेबी

पाणी करी ओ ससराजी हेण जो  
 ससराजी सरबर तमारो हिबोछा पो काय  
 हात मकेजो<sup>१</sup> म्हारी बाबाबक  
 बाबाबक, बुबका<sup>२</sup> से आगो पो नीर  
 जाओ पीओ ओ ससराजी राज करमो  
 ससराजी जीबओ बाल करीब ।

‘बालाबक’ गीत का सत्रन सम्भवतः बालाबक नाम अथवा ठठके निबट  
 कीं ग्रामों में हुआ है। मुन्दरसी नाम भी इसकी उत्पत्ति का श्रेय हो सकता  
 है, क्योंकि वहाँ बालोव्य की अरुंधा भाब भी कदाह मीत बोड़ने वाली  
 सिबनी की बहिणी मौजूद है। बालाबक का तात्पर्य आसपास के ग्रामवासियों  
 की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसकी मान-मनोविर्यो भी जाती हैं।  
 विरवात प्रथमित्त है कि यदि बालक बाली स्त्री को दूध नहीं उठरता हो तो  
 ठक तात्पर्य के बल में उस स्त्री की पोसी बोट्टर पहनाने और उसका पानी  
 पिलाने से दूध उठरने लगता है। बच्चों की अया भी उठने बीयेगी  
 जाती है।

बालोव्य का तात्पर्य रूप बना, इस बात की बालकाटी अरात है, पर  
 बल्परता से जैसे आते हुए विरवात को पच्छे वह अपना महत्त्व भाब लक  
 ब्याने हुए है। निरिबत रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि तात्पर्य फिना  
 हुआ है। गीत की भाषा निरिबत ही सुजनी मासरी है। ठठके कठिपय  
 प्रयोग, शब्द-बोधना तथा बी ३३ और रे ३३ की दूर तक जाती हुए इसकी  
 पुन इस बात को प्रकट करते हैं कि ठठका निर्माण तीन ही रूप पूर्व के  
 आठपाठ हुआ है।

१ समेरो

२ बुबा

## कम-समृद्ध लोक-कथा

एर रिचार्ड इम्पल ने एष हिस्साप के सेलो का, जो मध्यमात् की आरिभ  
 बातिशों के विषय में लिखे गए थे, सम्पादन करते समय (१८३९ ई०)  
 उपर्युक्त आर एक लोक-कथा का विहारापूर्वक विश्लेषण करके भाष्यवय में जो  
 परम्परा आरम्भ की वह कथायः बकरी गईं। अरपर के 'ब्रोजड टेक  
 डेब' के प्रकाशय के परवात् इस ओर गति से अर्य किया जाने लया।  
 'इण्डियन एन्टीक्वैरी' में डमेरु ने निरन्तर बंगाल की लोक-कथाओं को  
 प्रकाशित किया। सालविहायी वे, कुक, केम्पबैल, गोलीव, आर० सुपरी,  
 भीमती इकीड, सी एच० बोम्पस, एम० कुलाक, रोम्भा रेरी, पैर  
 आदि विद्वानों ने भी बहुत-कुल अय इस दिशा में किया है। किन्तु एव  
 लय विद्वानों के ग्रन्थों में इस बात का प्रमुख बोध निकला जाता है कि उनी  
 ने उनमें संग्रहित अधिकांश कथाओं को अपनी सुविधाकुमार फेर-बरत  
 किया। उनीं यहाँ की भाषा का बयोचित ज्ञान न होने से ओर फिर उष  
 समग्री को अपनी म्या में अनुरित करने के प्रयास-स्वरूप उव कथाओं में  
 स्वाभाविकता ओर मूल प्रेरक-शाक का प्रायः अभाव हो गया है। डेरिक  
 एडिन्सन, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'अक टेक्स ऑफ महाकीशल' में बोम्पस  
 ओर मिल का आदर्श रखा है, इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके  
 पूर्वकीं लेखकों ओर संग्रहकारों न ऐसी अनेक मूलों की हैं। उनीं एक

प्रमुख दोष यह भी बताया कि वर्तमान काल में अध्ययन और अन्वेषण की प्रवृत्ति इस कदर बढ़ती जा रही है कि हर ही कहीं लोक-कथाओं के मूल में निहित आकर्षण के उपादान गूढ़ न हो जायें ।

हिन्दी में लोकगीतों के तो कर समूह प्रचलित हुए हैं, पर लोक-कथाओं के संग्रह नाम-मात्र के सिवा दो-तीन ही हैं । विशेष रूप से डॉ० लक्ष्मण और शिवशंकर चतुर्वेदी के संग्रह 'ब्रज की लोक-कथानियाँ' और 'जुम्लेश्वर की लोक-कथानियाँ' या 'पापण्य नगण्य उल्लेखनीय हैं । इस प्रकार के अनेक संग्रहों की आवश्यकता है क्योंकि लोक-कथाओं का देश बड़े सागर की तरह है ।

मातृगीय लोक-कथाओं का तो अयना विशेष महत्त्व है । उनकी प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध है कि उनके प्रमुख लक्षणों की पुनरावृत्ति प्रायः अन्य कथाओं में होती रहती है । वास्तव में यह एक कथाई है । पंजाब, बंगाल, बिहार, उज्जैन, महात्मा, मंडाई अथवा मातृगी आदि स्थानों में पाए जाने वाली लोक-कथाओं में अनेक कथाएँ एक-दूसरे से बन्धु, पात्र, चित्रण और शैली में सादृश्य रखती हैं ।

यह बात ध्यान देने की है कि दूर-दूर तक गाँवों के घेरे, अन्धे और अल्प-ज्ञान स्थापित करने से कथाएँ एक स्थान पर बहीं रह सकीं । उन्होंने भी पात्राएँ थीं, लक्षण बड़ाएँ और प्रमुख स्थापित किये हैं । इस प्रकार जब भारत-कथाओं, प्राचीन देशों के आरम्भिक कथा-तस्मात्, 'वैताल-परिचयि', 'द्वितीय-देश' आदि स्थानों में अनेक कथानियों के बिगड़े रूप लोक-कथाओं में मिल जाते हैं तो यह धारणा और भी पुष्ट होती है । संस्कृतियों का अन्तर्गत-अन्वेषण लोक-कथाओं में स्पष्ट मन्वृता है । यहाँ तक कि एलिफन्टा के कथानुसार ये कथाएँ केवल इस देश तक ही सीमित नहीं हैं । बौद्ध म्वाकन-विषयों के साथ वे मध्य एवं पूर्वी एशिया तक में पहुँची हैं । अतः बिते हम भारतीय-कथा-साहित्य कहते हैं यह वास्तव में एशियाई कथा-साहित्य—तिब्बती, मंगोलो, मुसलमान और चीनी—साहित्य है ।



## कम-समृद्ध

सर रिचार्ड हेम्पल ने एस० हिस्सप के लेखों का, जो मध्य  
 पाठियों के विषय में लिखे गए थे, सम्पादन करते समय  
 लम्बे आरे एक लोक-रूपा का विद्वत्पूर्वक किरलोपण करके  
 रम्परा आरम्भ की वह क्रमशः बढ़ती गई। क्रम के  
 'स' के प्रकाशन के पश्चात् इस ओर गति से कार्य कि  
 [विद्युत एन्टीकवैरी] में इमेण्ड ने निरन्तर बंगाल की  
 अश्लिष्ट किन्ना। काशविहायी रे, कुक, केम्पबैल, मोलीब  
 ीमती इन्फैन्, सी० एच बोम्पस, एम कुलक, राम  
 ादि विद्वानों ने मी बहुत-कुछ श्रम इस दिशा में किन्ना  
 व विद्वानों के ग्रन्थों में इस बात का प्रमुख शेष निश्चिन्ता व  
 उन्में संग्रहीत अशिक्षित कथाओं की अपनी तुलना  
 न्ना। उन्हें यहाँ की भाषा का मनोचित ज्ञान न होने व  
 म्पनी को अपनी भाषा में अनुदित करने के प्रयास-स्वरूप  
 ामाशिक्षा और मूल प्ररक-शक्ति का प्रायः अभाव हो ग  
 लिखन, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'फ्रेन्ड टैक्स ऑफ महाशौ  
 ेर मिल का आदर्श रखा है, इस बात को स्वीकार व  
 ईन्हीं लेखकों और संग्रहकारों ने देसी अनेक मू<sup>३</sup> की है

ने म्हासे बँई विगाइपो बो उके बाहूँ ।”

पटेक सुतार के के नी—

काग मोठी दे नी

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी यई राबा का पास । “राबा-राबा, पटेक के बाय ।” “पटेक ने म्हासे बँई विगाइपो बो उके बाहूँ ।”

राबा पटेक के बाटे नी

काग मोठी दे नी

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गई रानी का पास । “रानी-रानी, राबा से फस ।” “राबा ने म्हासे बँई विगाइपो बो बहूँ ।”

रानी राबा से कसे नी

काग मोठी दे नी,

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गर उंदप का पास । “उंदप-उंदप, रानी का कपड़ा बाय ।” “रानी ने म्हासे बँई विगाइपो बो हूँ कपड़ा बाहूँ ।”

उंदरा कपड़ा काटे नी

काग मोठी दे नी,

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गर बिसरई का पास । “बिसर बिसर, उंदप के मार ।” “उंदरा ने म्हासे बँई विगाइपो बो हूँ मारूँ ।”

बिसरई उंदरा के मारे नी—

काग मोठी दे नी

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गर कुवप का पास । “कुवप-कुवप, बिसरई के का ।” “बिसर

१. बूदा

२. बिसरी

मारतबप के राखी में एक ही कथा अपने विभिन्न रूपों में बैसे बैसे रहती है इसका अध्ययन करना बड़ा मनोरंजक कार्य है। यह निश्चित है कि बालक्यों की कथाओं से लगाकर अन्य धार्मिक, सामाजिक, अनुभविक, आश्चर्यिक आदि सभी प्रकार की लोक-कथाएँ एक दूसरे रूप में एकमें से सीमाएँ तोड़कर जीवित हैं। इसकी पुष्टि के लिए नीचे एक विशेष प्रकार की मासवी सापेक्षक कथा (Accumulative droll), जो बाली प्रसिद्ध है, दी जा रही है। यह लोक-कथा मासवा में अक्सर बहूँ दारिद्र्य या पंचे-मारे 'बा', अथवा कल-बाबी अपने बालक्यों को बाध बँटाकर सुनाया करते हैं। मूल मासवी में कहानी इस प्रकार है :

### चिड़ी-बाग की वार्ता

अगस्ता के पावो मोती ने चिड़ी के पावो पोखो।<sup>१</sup> चिड़ी तो खर्र मर्र पोखो ने अगस्ता को खर्र यो मोती। चिड़ी ने चिन्वो, "कग बाग, मोती रे।"

अयसो लीम ये चडो ने केठी यो। चिड़ी मर्र लीम अ बाठ।  
"लीम-लीम, अग उडा।" लीम बोखयो, "बाग ने म्हायो केई विगाइयो को ठकके।" चिड़ी खेती दुर्द बली मर्र।

लीम बाग उडाप थी,  
बाग मोती रे थी,  
चिड़ी खेती रेनी।

चिड़ी गई सुवार बने। "सुवार-सुवार, लीम अर।" "लीम ने म्हायो अर विपाइयो को लीम अरुँ।"

सुवार लीम कडे थी,  
लीम बाग उडाप थी  
बाग मोती रे थी  
चिड़ी खेती रेनी।

चिड़ी गई पटेक अ पाठ। "पटेक-पटेक, सुवार के अर।" "सुवार

ने म्हाते कैर विगाइयो वो उके बरुँ ?”

पटेक सुतार के के बी—

काग मोठी दे नी,

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गई राबा का पास । “राबा-राबा, पटेक के बरु ।” “पटेक ने म्हाते कैर विगाइयो वो उके बरुँ ?”

राजा पटेक के बरुे नी

काग मोठी दे नी

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गई रानी का पास । “रानी-रानी, राबा से बरु ।” “राबा ने म्हाते कैर विगाइयो वो बरुँ ?”

रानी राबा से कसे बी

काग मोठी दे नी,

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गई उंदरा का पास । “उंदरा-उंदरा, रानी का कपड़ा बरु ।” “रानी ने म्हाते कैर विगाइयो वो हूँ कपड़ा बरुँ ?”

उंदरा कपड़ा बरुे नी

काग मोठी दे नी

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गई बिलर का पास । “बिलर बिलर, उंदरा के मार ।” “उंदरा ने म्हाते कैर विगाइयो वो हूँ मारुँ ?”

बिलर उंदरा के मारे नी—

काग मोठी दे नी

चिड़ी रोठी रेनी ।

चिड़ी गई कुवरा का पास । “कुवरा-कुवरा, बिलर के का ।” “बिलर

१. पूरा

२. चिड़ी

ने म्हाये केई बिगाइयो बा लई ?<sup>१</sup>

कुठरो बिछई के काप नी<sup>२</sup>

काग मोठी दे बी

बिड़ी रोठी रेबी ।

बिड़ी गई बांग<sup>१</sup> का पाव । “बांग-बांग कुठरा के मार ।” “उ  
ने म्हाये केई बिगाइयो बा ठके मार ?”

बांग कुठरा के मारे बी<sup>३</sup>

काप मोठी दे नी

बिड़ी रोठी रेबी ।

बिड़ी गई बस्ते<sup>१</sup> का पाव । “बस्ते-बस्ते, बांग के बास ?” “  
ने म्हाये केई बिगाइयो बा बाई ?”

बस्ते बांग के बास नी<sup>३</sup>

काप मोठी दे बी

बिड़ी रोठी रेबी ।

बिड़ी गई समन्दर का पाव । “समन्दर-समन्दर, बस्ते कुम्भ ?” “  
ने म्हाये केई बिगाइयो बा कुम्भ ?”

समन्दर बस्ते कुम्भाय नी<sup>३</sup>

काप मोठी दे बी

बिड़ी रोठी रेबी ।

बिड़ी गई हत्ती का पाव । “हत्ती-हत्ती, समन्दर के बूत ।” “कम  
ने म्हाये केई बिगाइयो बा उके बूत ?”

हत्ती समन्दर बूते नी<sup>३</sup>

काप मोठी दे बी

बिड़ी रोठी रेबी ।

१ बांगी

२ काग

३ बस्त

बिही गद मन्दर का पाठ । "मन्दर-मन्दर, इली का धन में मय ।"  
 मन्दर बोले, "म्हारे बेटे, अभी धन में मय बरें ।"  
 इली के, "म्हारा धन में क्यों मय, हूँ अभी सम्भर भूली बरें ।"  
 मन्दर बोले, "म्हारे क्यों पूसे, हूँ अभी बस्ते सुम्भर हूँ ।"  
 बस्ते बोली, "म्हारे क्यों सुम्भर, हूँ अभी बस बाज हूँ ।"  
 बाज के, "म्हारे क्यों बस्ते, हूँ अभी कुत्ता के मारें ।"  
 कुत्ते बोले, "म्हारे क्यों मारे, हूँ अभी बिल क छर्द बरें ।"  
 बिल के, "म्हारे क्यों काय, हूँ अभी उडरा के मारें ।"  
 उडरा के, "म्हारे क्यों मारे, हूँ अभी रानी का कपड़ा खरी हूँ ।"  
 रानी बोली, "म्हारा कपड़ा क्यों खटे, हूँ अभी राजा से खरें ।"  
 राजा के, "म्हारे से क्यों खटे, हूँ अभी पेटे का शरें ।"  
 पेटे का शर के, "म्हारे क्यों खटे, हूँ अभी सुतार के हूँ ।"  
 सुतार के, "म्हारे क्यों खटे, हूँ अभी लीम का हूँ ।"  
 लीम बोली, "म्हारे क्यों खटे हूँ अभी काग ठहर हूँ ।"  
 काग बोली, "म्हारे क्यों खटे, हूँ अभी मोठी दर हूँ ।"  
 काग ने मोठी दर दिया । बिनी रोती खरंगी ।

डॉक्टर छन्दे ने अपनी पुस्तक 'श्रव-लोक-साहित्य का अध्ययन' में प्रकाश की कथाओं पर एक सुन्दर विरलेस्य प्रस्तुत किया है । उन्होंने श्री अज्ञानिदी की 'कम-संग्रह' कहानी कहा है । शरत्कान्त मिश्र एनी एमि भी परिभाषा करते हुए लिखते हैं *Accumulative drolls* : cumulative folk tales are stories in which the narrative goes on by means of short and pitty sentences, and, at every step of which all the previous steps thereof are repeated till at last the whole series of steps thereof are recapitulated "

उक्त कहानी में एक विचार गति-धम का एक अज्ञान-मय विलक्षण कहि है । पूरे कथित श्रवों की पुनरावृत्ति काग-मुनम मतावृत्ति के अन्तर्गत

मनोवैज्ञानिक सामीप्य का प्रयास क्या बात तो असुविधा न होगी। इस प्रकार की कहानी में मुख्य पात्र द्वारा किसी वस्तु की प्राप्ति का उद्योग, प्यु पच्ची, मनुष्य, बड़ अथवा खेतन पदार्थ से सहायता के लिए प्रार्थना, क्रमशः प्रायणा की निष्फलता, प्रतिहिंसा का अनुद्योग और अन्त में छुद्र प्राणी का तैयार हो जाना कथाकथन के प्रमुख निर्माण-रत्न हैं। छुद्र प्राणी के तैयार हो जाने ही कहानी पीछे की ओर लौटती है। क्रम-सुबत्ता टूटती जाती है और मत्स्य प्राणी अथवा पदार्थ अपनी हानि की आशंका से मन्मथ हो मुख्य पात्र के कार्य के लिए तैयार होता जाता है। अन्त में अर्थात् फल की प्राप्ति के साथ कथा समाप्त होती है।

वही कहानी बिहार में तोटा और मुर्गी के कथने की कहानी, बगाल की तुन्तुमी पच्ची और नाह की कहानी, चीशोन की बटेरी की कहानी और ब्रह्म की ओर और टोल वाली कहानी से मिलती है। निरपेक्ष ही अन्त प्राणियों में भी ऐसी ही कहानियाँ प्रचलित हैं। उनमें केवल उपकरण और पात्र बदल जाते हैं, किन्तु कथाकथन, उन्म और उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं आता।

छुद्र प्राणी की सहायता के लिए तैयार हो जाना एक ऐसा वृत्त है जो लोक-कथाओं में बल प्रचलित है। डॉ० स्टेनर इस वृत्त को मुद्र-कालों के आन्तरिक उद्देश्यों में निहित मानते हैं, क्योंकि इस विषय में निरपेक्षक कुछ नहीं कहा जा सकता। छुद्र जीव का उत्पन्न हो जाना अनुभवमान्य बात है। 'मत्सेसे की मैंस पाड़ा ब्याप' वाली कहानी में उद्धिहित मत्स्यों में यह अनुभव भी दिखा है कि बड़ी और मत्सेसे की वस्तु भी कभी-कभी होता वे जाती है और जिसकी अल्पता न की जाय ऐसी वस्तु काम ले देती है। छोटे मुँह बड़ी बात निकल जाना अनुभव नहीं। फिर क्या मनाह है कि मत्स्य-जैसा प्राणी हाथी को न डरा दे। ऐसी कहानियों में जहाँ एक ओर बाल-मनोवृत्ति की दृष्टि के उपकरण अस्तित्व में हैं, वहाँ बड़ी और शक्ति-सम्पन्न वस्तुओं के ठीक सामने छोटे और शक्तिहीन प्राणियों की सहायता द्वारा एक हीसा व्यंग्य भी प्रस्तुत है।

## लोक-नाट्य

लोक-नाट्य 'लोक'-रक्षण का आधुनिक-राष्ट्रीय साधन है जो नागरिकों के बीच से अनेकानेक निम्न स्तर का, पर विशाल जन के हितों-साथ से सम्बन्धित है। ग्रामीण जनता में इसकी परम्परा पुरानी से पुरानी आ रही है। चूंकि 'लोक' में ग्रामीण एवं नागरिक जन सम्मिश्रित हैं, अतः लोक-नाट्य एक मिश्र-कुले जन-समाज का मंच है। परिष्कृत कवि के लोक के लिए दिए गए कथों का विचार है उसको आधार भूमि यही लोक-नाट्य है। परिवर्तनों के प्रयासों ने इसके विकास को इस पहुँचाए प्रकृत है, पर वे उसी गति को एकदम कुदृष्टित न कर सके। देश की अर्थव्यवस्था इन्हीं प्रभावित होती है, समाज की प्रचलित मान्यताएँ इनमें रत का संसार करती हैं और लोक-साधारण इन्हीं अभिव्यक्ति में आर शोध लगा देती हैं।

राष्ट्रीय बलकों के सम्पन्न से अतः होगा कि उनके विकास का बीच लोक-नाट्य में विहित है। अपने अपरिभाषित किन्तु जन-मात्रों को टीका-टिप्पणी करने वाले अभिनेय एवं वाचिक अभिव्यक्ति के साधन लोक-नाट्य अनेक बलकों की परम्परा में अपन मूल प्रयासों-सहित प्रकृत हुए। अतः के नाट्य शास्त्र में नाटक को पंचम वेद कहा गया है जो राष्ट्रीय के संरक्षण के लिए भी है। अतः अनेक साधारण जन ही हैं। नाट्य-शास्त्र में तीन प्रकार के मंचों का विचार है—विद्वत्, अल्पज्ञ और अल्पज्ञ। अल्पज्ञ



ने स्पान्तीय क्रांतियों को पीछे हासकर पारंपरिक प्रभुत्व के आकांक्षित सपने सम्हालित कर लिया। इतना होने पर साधारण जन-जमाने मन्तव्य के सामने अपनी सीमा गति से प्रचलित रहे। संक्षेप पर विचार करना यहाँ अभीष्ट होगा।

### १. बीबी भागवत

भागवत वेदव्याख्यान को हमें जितने हमें ज्ञान मन्त्र कह सकते हैं। बीबी भागवतों में बीबी भागवत का रूप प्रचार रहा। यहाँ जन्म में प्रचार रहा यहाँ किन्हीं अर्थों में शासन द्वारा सम्मान भी इसे प्राप्त। 'कृचिबुद्धि कलाधर' मन्त्रसिद्धों यात्रा करके अपने प्रदेश की जनता को प्रेरित किया करती थी। यहाँ की जनता के लिए हमें सीमा द्वारा प्रेरित मन्तव्य प्रचाली आत्म भी विद्यमान है। मन्त्रियों के ज्ञान भाग में साधारण जनता पर मन्त्र बनाकर पाठों द्वारा अभिप्रेत किया जाता। मन्त्र-शासन का इन अभिप्रेतों में बड़ा महत्त्व है।

### बोम्बेट

बोम्बेट का अर्थ है 'चमड़े के पिर्नों का लेला'। ये लेला एक प्रकार की तरह संचालित होते हैं, जैसे कठपुतलियों के प्रदर्शन। ये मन्त्रसिद्धों मन्त्र पर इन चमड़े के पिर्नों को संचालित करता है। प्रकृत भाग से ही जन-संवेत देता है। कहते हैं इयोनोपिया के बोम्बेट में इस भारतीय लोक-मन्तव्य का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। यहाँ मन्तव्यों की कथा-कथन पौषणिक एवं उमाशय या महाशय लक्षित है। प्राचीन इतिहास भारतीय मन्त्रों में इन मन्त्रों के अतिरिक्त कोई रूप नहीं मिलते।

### राष्ट्र

ये मन्त्रों की प्रकृतमूर्ति जनता में प्रचलित लक्षित, गीता, उमाशय

और बहुरूपि आदि नाट्य प्रकारों से सम्बन्धित है। इसमें अतिशयोक्ति न होगी कि महापद्म के ये लोक-नाट्य प्रकार कर्नाटकीय लोक-नाट्यों से बहुत-कुछ सम्बन्धित हैं तो भी उन्हें एकदम एक ही बस्तुईं स्वीकार करना अटल है।

### कालिदास

मराठी विद्वानों में कालिदास की अस्तित्व के सम्बन्ध में मतभेद है। रंग नायक दयदत्त के अनुसार दाशरथ्य नामक व्यक्ति ने १६वीं शताब्दी में कालिदास का प्रथम बार प्रदर्शन किया, पर तुलसीदास ( १७वीं शताब्दी ) के अभंगों में कालिदास का उल्लेख है तथा महाभारतीय काल-कोष के लेखक उसे अति प्राचीन मानते हैं। १७वीं शताब्दी में कालिदास में प्रयुक्त यद्यपि बहुत-कुछ हिन्दी ही था। दक्षिण भारतीय हिन्दी भाषा की दृष्टि से कालिदास बहुत-कुछ हिन्दी भाषकों के निष्ठ है। मध्ययुग में कालिदास अपनी पृथ्वीमति पर था। इसके द्वारा दशावतार, कब्रदेवता, रामाजीवन्त आदि कथाएँ अभिनीत की जाती हैं। प्राणम में बान्दी और गणपति का प्रवेश होता है। कथाओं में कथोपकथन कम और गीत तथा अभिनय का महत्त्व अधिक है। ये नाटक धार्मिक उत्सवों के अवसर पर अथवा नवरात्रि के दिनों में प्रदर्शित होते हैं।

### गोबल

गोबल भी मराठी नाटक के आदि-रूपों में अपना स्थान रखता है। गोबल का शाब्दिक अर्थ है गड़गड़। नृत्य एवं गान के मिश्रित प्रयोग द्वारा इनके माध्यम अम्बारेषी के प्रति सम्मान व्यक्त किया जाता है। ऐसे गोबल प्रमुख हास्य-अभिनेता को कहा जाता है। संवाद पवाड़े की पुनर्-प्रस्तुति हैं। गोबल और पादलीपुत्रा के बीच संवाद-गान कथा को विस्तृत करता है। गोबल पर धार्मिक उत्सवों के साथ धार्मिक गानों का प्रभाव भी पड़ा है, क्योंकि कभी कभी देवी का अंग में प्रवेश, अभिनेता

का घूमना और मुझ से सम्बन्धित बातों का बोलना इस प्रमाण को प्रकट करता है।

### तमारा

तमारा बहुत एक प्रकार का गीत-नाट्य है। दो-तीन पुरुषों के साथ एक गावने वाली यादिकर पद्य गाती है। पुरुषों के पल्लवक, प्योवक का और एकाध वाद्य होता है। गायिका साधनियों गाती है और लवक लोगों के सामने आती है। तमारा का प्रभाव महापद्य में अधिक है। साधारण जनता के लिए वह जेल बिना किसी धार्मिक मंत्र के हृदय पर प्रसर करने वाला मनोरंजन का साधन है, क्योंकि इसमें पीपुलिकता का प्रभाव यहीं अपितु सामाजिक, ऐहिक और शृंगारपरक भावनाओं के कथा सुनी और पद्य-कवनों का प्रचार है। आज भी मण्डी मण्डों पर तमारा बड़े प्राय से किया जाता है।

मराठी, बहुरूपिया और चित्रकवी भी महापद्य की जनता के मनोरंजन के साधन हैं। पर उनमें सामूहिकता का अभाव और केवल मात्र तथा व्यक्ति का महत्त्व अधिक है। इनका प्रचार कम है।

### गुजरात : मवाई

मवाई गुजरात में अत्यन्त ही साधारण स्तर का प्रचलित लोक-नाट्य है। इसके लिए मंच की आवश्यकता नहीं होती। गाँव-गाँव में मवाई मन्दिरनिर्वा घूमती रहती है। बिनके द्वारा बीफन की साधारण पत्रिकाओं का मवाई में प्रदर्शन किया जाता है। पुरुष गायक उन्मिस्त होकर गाते हैं। मास्त्रम में गणपति का प्रवेश होता है। अम्बा की स्तुति भी की जाती है। उत्पन्नात् को प्रहसनात्मक कथा प्रस्तुत की जाती है। मवाई में अष्टौपथा भी सामने आ जाती है।

बंगाल । बाबा

बंगाल और पूर्वी बिहार में बाबा (यात्रा) लोक-नाट्य का उगटित रूप है। 'बाबा' का अर्थ है प्रवास का कुल्लू। कृष्णोपासकों का दश वर्षे उत्सवी के अवसर पर कृष्णलीलाओं को संगीत-नाट्य के माध्यम से मार्ग में प्रदर्शित करते हुए बाबा है। बाबा में अमरा कृष्णलीला की आड़ में शृङ्गारपरक गीत-अभिनय का प्रवेश हुआ। मस्त्रियों के आंगन में ये लीलाएँ विशेष रूप से खेती जाती रहीं। निस्तन्देह लोक-श्रुतियों ने धार्मिक मार्गों पर हानी होकर उच्छृङ्खलता का रूप धारण किया। कहते हैं १६वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में कृष्णकमल गोस्वामी के प्रयत्नों से इसमें अनियमितता और पतनोन्मुखी स्थिति सुधारने लगी। प्रारम्भ में बाबा का संगीत-पद्य अल्पव्यवस्थित और अभिनय साधारण कोटि का हुआ करता था। कृतिपय रङ्ग प्रयोगों ने कथानकों में शिथिलता ला दी थी। कृष्णकमल गोस्वामी ने इस दिशा में अज्ञान, विषय-वस्तु और बाह्य रूपों को परिष्कृत करने का प्रयत्न किया।

गम्भीरा

गम्भीरा शैव मठशक्तिपंथी का मंत्र है। प्रायः शम्भा के समय सुल पर आकर पहनकर शोभ शिव की आराधना में मित्र-मित्र प्रथार के स्वांग बन-साधारण के समूह करते हैं। इसमें मंत्र की आवश्यकता नहीं होती। गम्भीर पर कुछ विद्या दिया जाता है और साधारण-ना परना कानकर कर मजारबन किया जाता है। लोक-ग्यों को आकर्षण करने का यह उतम माध्यम है। अभिनेता मृत्यु करते हैं और सम्मिश्रित रूप से ऊँची आवाज में गाते हैं। अभिनय में गम्भीरता का अवयव अभाव रहता है। अभिनेताओं को समूह बैठे हुए लोगों से बीच-बीच में बात करने या अपनी मुद्रिया के लिए परने के पीछे जाने जाने की स्वतन्त्रता रहती है।

गजस्थान । कठपुतली

कठपुतली के उत्र करने वाले घरस्थान में घूमते फिरते हैं। प्रायः

साड़ी करके आगे के भाग में रगीन कलम से बना परदा बाँग दिया जाता है, जिसके आगे सूत्रधार पुस्तकियाँ उतारकर रात्रपूरी बीरता को प्रकट करने वाले छुल-दरबार से सम्बन्धित किसी घटना को संघासित करता है। एक व्यक्ति बोलक पर कमा का कर्तव्य करता है। पुस्तकियाँ का रंग चमकीला और पानी के अदुरुप होता है, बिम्बे व्यक्तिगत का पूर्यामत होता है।

### स्वात

स्वात एकस्थान लोक-मंच का प्रमुख रूप है। स्वात के लिए साधारण मंच बनाया जाता है, जिस पर पौराणिक तथा धार्मिक कथाओं के अतिरिक्त जनभुक्ति पर अपना ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित कथाओं को अभिनीत किया जाता है। गाँधी में स्वात का प्रचार अधिक है। स्त्री पानी का अभिनय पुरूप ही करते हैं। संगीत स्वात का भाग है, अतः स्वात गीत-नाट्य की श्रेणी में आते हैं।

### बस : रास

बस का रास साधारण बसवा का आहम्बरहीन और उल्ल मंच है। रास-कृष्ण के लिए मंच पर आसन होते हैं। गोपिकाओं और उल्ल-मराह लियों के लिए भी स्थान होता है। मागस्त, वैष्णव-सम्प्रदाय के कृष्ण-मल कविता, बसवेक के पदों और अन्य मध्यकालीन साहित्य-शास्त्री ने कृष्णो-रासना के इत वाक्य-प्रकार को उत्कृष्ट प्रदान किया। इतका मुख्य विषय हृष्यकीला प्रदर्शित करना है। नृत्य और गीत-बाधों का प्राधान्य तथा न्योपकथन की ग्युनता हममें देखी जाती है।

### रामलीला

रामलीला का आचार राम-काम्य है, पर लोक-वाक्य के रूप में यह उल्लम मर्यादीक परम्परा आज समस्त मातृवर्ष में विद्यमान है। रामलीला का प्रचार गाँधी में आज भी चल है। दशहरे के अवसर पर यह परम्परा हमें सशोच प्रकृत होती है।

नोटकी

नोटकी और व्यास में बहुत समानता है। सम्मिलित नोटकी बहुत बाद की वस्तु है और ऐतिहासिक ब्रह्मा के मनोरंजनार्थ मृगातरक व्यासों को अभिनीत करने के लिए इच्छा प्रचार हुआ।

मालवा : मांच

'मांच' मंच शब्द का मालवी उद्भव रूप है। मालवी में यह शब्द मंच बोलने और उस पर अभिनीत किये जाने वाले व्यक्तियों (लिखित) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। मांच प्रायः ग्राम अथवा नगर के कुले स्थल में ऊँची भूमि पर अथवा उन्नत विद्यालय या बौध्दिक क्लबों में हुए मंच पर खेले जाते हैं। इसके खेलों के लिए नैपथ्य अथवा संगमंजीव आडम्बरों की आवश्यकता नहीं होती। अभिनेता मंच के निकट स्थित स्थान से अपने कत्र बदलकर अभिनेता के हेतु मंच पर आ जाते हैं, जिनमें स्त्रियों का अभिनय भी पुरुष ही करते हैं। मंच की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि दर्शकमण्डल वहीं से भी बैठकर देख सकते हैं। अत्राभूषण अथवा अभिनय का महत्त्व इन मांचों में गौण विषय है। प्रचलन वस्तु संगीत है। उसमें भी ऊँची आवाज में भाषा विन्यक्ति के लिए गाय जाने वाले 'बोला' अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। भोलापण 'बोली' अथवा पात्रों के लबादों के बौरल पर 'बैर की है' कहकर मूक उठते हैं। 'बोला' की लयभंगी का साथ होना अच्छी है। एक विशेष आशय के साथ बोलाकिया देक पर धाप मारकर भाषों के महत्त्वपूर्ण अंश को उल्लेख प्रदान करता है। गाने वाला ठीक इस समय 'दोस्तान पड़ने के' ध्वनि का उपचार करता है। अतएव मांच 'सोक-गीति-नाट्य' है। सोक-गीति नाट्य के लिए जिन पुरुषों का होना आवश्यक है वे सभी मांच में लिखित हैं। सोकगीतों की हृदयस्पर्शी शब्द-शोषणा, गीति-तत्व और नाट्य का लक्ष-रंजनवादी स्वरूप तीनों का समावेश इन मांचों में है। संगीत के विशेष वैश्विक का व्यक्त करने के लिए इन मांचों में छोटी रंगत, रंगत इच्छती, रंगत दोहरी, रंगत भेजा की, रंगत दादरा आदि शब्दों द्वारा व्यक्त

लोकोक्तियाँ ही हैं।

समग्र रूप से कहावतों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि कल्प और धर्म का आहम्बर उनमें नहीं है। वे यथार्थ की भूमि पर बीजक लिए नीति-वाक्यों की मौखिक प्रचलित हैं। अन्योक्ति के रूप में कहावतें क बार प्रविष्ट होती हैं।

मोटे रूप में कहावतों का निम्नानुसार वर्गीकरण किया जा सकता है—  
१ विषयानुसार, २ स्थानानुसार, ३ भाषानुसार, ४ जातीयानुसार  
भारतीय भाषाओं की कहावतों का उक्त पाठों प्रकार से वर्गीकरण कि जा सकता है। स्थानीय लोकियों और भाषाओं में अपार सामग्री उपलब्ध है। पाप और मनुषी के नाम से पाई जाने वाली कहावतें उक्त वर्गीकरण में सम्मिलित की जा सकती हैं, अपना उन्हें रचयिताओं के नाम से अलग भी रखा जा सकता है। पं० राममरेश त्रिपाठी ने परिश्रम करके 'भारत साहित्य' भाग ३, में पाप, मनुषी, सासुसुम्नस, माधोबास, इत्यादि आदि व्यक्तियों द्वारा निम्नित कहावतें संग्रहित की हैं।

अक्षर के समक में पाप द्वारा कियी ही कहावतें प्रचलित की गई थीं। कलौष के पास उनके नाम का एक गाँव भी पहले था। परन्तु अब गाँव का नाम तो बदल गया, तो भी उनके वंशज उसमें बसित हैं। लोगों का कहना है कि पाप से उसकी पत्नी की लड़ा ही होइ रहा बरती थी। पाप का कहते पत्नी उससे लड़ता कहती। पाप की कहावतें पिछानों को प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं। उनकी कहावतों में नीति की बातें इतनी स्पष्ट से व्यक्त हुई हैं कि कोई भूलो नहीं भूल सकता—

आजस नींद किमाज वासै चोरै नासै चोँडी ।

पेचियाँ खीबर केसके वासै, बावै वासै वासी ॥

×

×

×

सामन बोकी, माया गाप माप मास जो मैस विद्याप ।

कई पाप कह सर्वाँ बास, चापै मरै कि माखिक जाप ॥

मनुषी के धम्म के सम्बन्ध में कियी ही पिचिय बातें पाई जाती हैं।

परन्तु वे कब हुए, कहाँ हुए इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण प्राप्त नहीं। मोरलपुर बिले के आसपास महुरी नामकी एक जाति पाई जाती है जो वर्ण के सम्बन्ध में महुरी की कहावतों के आधार पर मरिच्य आदि बताया जाती है। उदाहरण में महुरी नाम की एक स्त्री की कहावतें भी प्रचलित हैं। महुरी और महुसी की अविभक्त कहावतें इस नाम के भ्रान्दे में मिलती गई हैं।

माया की सम्बन्धता अथवा उसकी रसात्मकता में कहावतें बड़ा सहयोग देती हैं। स्व प्रेमचन्दकी की लेखनी ने जो माया कहावतों को पत्र-पत्र प्रमुक्त करके हिन्दी को प्रदान की है वह पढ़ी जाने पर एक प्रश्न का म्युर उठ बरस जाती है। बाबू बन्धुशंकर प्रसाद ने भी कहीं-कहीं कहावतों को स्थान दिया है। 'उसने कहा या' के लेखक जन्मभर शर्मा गुलेरी जी ने जो भी लिखा है कहावतों को प्रमुक्त करके उसमें जान डाल दी है। लोकोक्ति नामक एक अर्ल-अर मी साहित्य में विद्यमान है जो इस बात का सबूत है कि लोकोक्तियों माया में अर्ल-अर का काम जाती हैं। ये वास्तव में 'सोने में मुहागा' वाली कहावत को बरिठार्य जाती हैं। आत्र हमार इति श्लेष बिसकुल बरस गया है। बिल प्रश्नर कविता में रसात्मकता खाने के लिए प्रादेशिक शब्दों का प्रु दिया जाता है, उही प्रश्नर प्रादेशिक मुहावतों और कहावतों का प्रयोग माया में जान डाल देता है। बुनिया बनीकता क पादे दीइती है। मकान्ता आशिर क्या है ? अनुभव तो बुनिया सदियों से जाती आ रही है। वही पुजने अनुभव और वही हमारे स्थायी म्ब बर बनीन शैली या बनीन टंग से ब्यक्त होते हैं ता हमें बनीनता का अनुभव हावा है। सत्य तो बिरलजामी है। उज्जमे प्रश्न करने में बनीनता प्रादिए।

सत्य स्पष्ट है। फिर कहावतें पूर्ण सत्य तो कही नहीं जा सकती। पदार्थ जो है, वह प्रसङ्गी रूप में कहावतों में बन्द नहीं। उक्तका संश्लेष-मर कहावतें प्रस्तुत जाती हैं। एक स्थान विशेष का सत्य बूते स्थान-विशेष का पूरा सत्य नहीं हागा। खरने स्थान की सीमा और कल्पासीन प्रमाण उजमें हागा।



कहावतों में आपने देश-शक्त की विशेषताएँ विद्यमान होती हैं। कम से-कम उनके द्वारा उसके उद्गम-स्थान और तत्कालीन परिस्थिति का अर्थ कम तो लगाया ही जा सकता है।

भोवा की खोज गदेबो, बड़ेपुर की खोज बनेबो

× × ×

देवकी राज्याजी भाँरी देश राँड मुहाना पृथ ही भेव

× × ×

मन्की में सुखपाँ करे कुच का ऊपर राव

पूखा पे कुचपाँ करे, बन माता मेवाव

ये कहावतें मेवाड़ की उपमा हैं या 'नो पिता तैरा जगन्नाथ, जोहरी के खेगो जोषबाह' जैसी कहावत उपस्थान की है, यह सरलता से जाया जा सकता है।

हर प्रांत का अपनापन उसकी कहावतों में मिलेगा। वी अनुभवपूर्ण सागर से सभी ने रत्न ईँकुर सुर्लक्षित रखे हैं। कहावतें अनुभव की निष्पत्ति हैं। अनुभव सर्वव्यापी और शारीरिक है, अतः उसके आधार पर विभिन्न कहावतें अलग-अलग जगहों में विभिन्न शब्दों में ईँकी हुई मिलती हैं। आपने सुना होगा—

आम्हा बाँटे देवकी अपनै-अपनै को दे

मह लोकोक्ति मेवाड़ी में इस प्रकार है—

आम्हो बाँटे क्षीरको कर-कर कर का मे देव।

इसी तरह मेवाड़ी में—

कवि जगन्नी पारपी नृप, बैरवा कर भइ

पाँ से कपट न कीजिए पाँरा रक्काँ कपट।

साधारण रूप में—

कवि बिन्देरे, पारवी मंगल गाती नर

इत बातों को जालिय, सभी बर्क के द्वार।

उपर्युक्त में कहावत है—

भूख से बगलबगल कोनी नींद के बिनालब कोनी है।

इसी को दूसरे स्थान पर बड़ाकर कहा गया है—

मोत न जाने बाल कुन्नाठ, भुन्न न जाने वाली भात,

नींद न जाने हरी पाट, प्यास न जाने बोली बाट।

ब्रह्मचर्येण च संक्रान्ति-काले से गुजरती हैं तब उनके रूप का विकृत हो जाना सम्भव है। परिस्थितियों का बदलाव ही तो चिन्तनों ही कथाओं के लिये ऐतिहासिक महत्त्व की बन जाती हैं। उस समय यदि वे लिपिबद्ध नहीं की जाती तो निश्चय ही नष्ट हो जाती हैं, क्योंकि समय का प्रभाव उन पर विशेष तौर से पड़ता है।

इस दिशा में प्रयत्न बहुत कम हुए हैं। फेल्ल ने हिन्दी कथाओं पर 'फेल्लन्यू डिक्शनरी ऑफ़ हिन्दुस्तानी प्रोवर्ब्स' (१८८६) नामक ग्रन्थ में मारवाड़ी, पंजाबी, मोज्जुती और तिरहुती कथाओं पर प्रथम श्रद्धा दी। अरमीटी की सोशेजियों पर से एच० बीकर्स का काम उल्लेखनीय है। पंजाबी, मराठी, बंगाला, उड़िया आदि भाषाओं में महत्त्व प्राप्त संग्रह तैयार किये गए हैं। मेरठ क्षेत्र के मुहावरों पर लगभग १७ वर्ष पूर्व एम० एम्बेड्जिंह वर्मा ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में विस्तारपूर्वक (संश्लिष्ट सामग्री सहित) एक निबन्ध प्रकाशित किया था। उसी प्रकार उन्नी दिनेश डॉक्टर पीताम्बरदास बह्मसास की भूमिगत संहिता बङ्गाली भाषा की कथाओं की शालिग्राम वैष्णव के प्रयत्नों से पत्रिका (संस्कृत १९६४) में प्रकाशित हुई। गुजराती में 'गुजरती कथेक-संग्रह' (दलीपन्द शाह) मालावी में 'मालवी कथाओं' (एकलाल मेहता), मेवाड़ी में 'मेवाड़ी कथाओं' आदि उपयोगी संग्रह उपलब्ध हैं।

## प्रहेलिका-साहित्य

प्रहेलिका ( पहेली ) बुझौबल, पारसी ( मासकी ), प्याली ( मा० ) वा उस्तादा मी बढलाती हैं । उस्तुठ में पहेली को 'त्रघोत्र' बढते हैं । डॉ. एस्वेन्ड ने पहेली-साहित्य को लोभ्येकि-साहित्य का ही एक अंग माना है, क्योंकि लोभ्येकिनों में शब्द-संकोच प्रायः अल्प-विस्तार का जो लक्ष निहित है, वह पहेली में विद्यमान है । पहेली प्रायः वस्तु के सम्बन्ध में कतिपय विरोधताओं सहित संकेत भर रहता है । रूप रंग, पुत्र्य और आकार प्रकार मी सांकेतिक रूप में व्यक्त किने जाते हैं । उन्हें ही आधार मानकर उतर निचाले जाते हैं । गोंवों में अबाकाश के क्षणों में पहेलियों बालकों, बूढ़ों और बौद्धाओं सभी के लिए मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन हैं । स्त्रियों मी उन्हें अपना अस्त्र समझती हैं । समुदाय में सामाज्य की परीक्षा लेने के लिए स्त्रियों पहेलियों की मङ्गी लया देती हैं । सृष्टि पर किस्वान् करने वाले, अनुमवी और बुद्धिमान मी कमी-कमी हमने बौद्धल मिश्रित अर्थ-गौरव के सामने तिर भुजा देते हैं । इसीलिए मी रामलनेश त्रिपाठी ने पहेलियों को 'बुद्धि पर शान बढाने का मन्त्र वा 'स्मरण-शक्ति और कलु-ज्ञान बढाने की कलें' कहा है । आपका तो किस्वास है कि श्रुत्यद में पाई जाने वाली पहेलियों के ज्ञान से उसे 'पहेलियों का वेद' कहा जाय तो ठीक है ।

श्रुत्येद का एक मन्त्र बहाँ बीभसहित उद्घुत करवा उचित होमा—

अथर्ववेदो ऋषीः अथर्ववेदो ऋषीः  
 द्वे ऋषीं सप्तहस्ता सो अथर्व ।  
 त्रिधा ब्रह्मो ब्रह्मणो रोरवाति  
 महादेवो ऋषीः अथर्ववेदः ।

( ब्रिहदे पार षीग हैं, तीन पेर हैं, दो सिर हैं, सात हाथ हैं, जो तीन बयनों से बँधा हुआ है, वह मनुष्यों में प्रसिद्ध हुआ ब्रह्मण्डल कहा जाता है । )

‘साधारण्य अर्थ यही है, पर गूढ़ार्थ यह है कि वह ब्रह्मण्डल यद्यपि ब्रिहदे पार षीग पारों बंद हैं, प्रातः-वास्त, मध्याह्न और सायंकाल तीन पेर हैं, उदय और अस्त दो सिर हैं, सात प्रकार के रुद्र सात हाथ हैं, वह मन्त्र, ब्राह्मण और अन्य सभी तीन बयनों से बँधा हुआ मनुष्य में प्रसिद्ध है ।

“महाभारतप्रकार पाठम्बलि ने अथर्वम ही में लिखा है कि वह रुद्र है । पार षीग पार प्रकार के रुद्र (नाम, आख्या, उपर्या और निपात), तीन पेर मूल, मन्त्र और अथर्वान, तीन बयल, दो सिर, दो प्रकार की निपात और अर्थ मापाएँ, सात हाथ सात विमर्क्तियों, हृत्, गला और मुक्त बौध्ने के स्थान ।

“दूसरों के मत से वह रुद्र है । पार षीग पारों दिशाएँ, तीन पेर तीन देव, दो सिर उरु और दिव, सात हाथ सात चिरुएँ, बौध्ने के तीन स्थान पृथ्वी, अन्तरिक्ष और अणुनाभ ।”

अथर्व वेद गद्य मन्त्र निरुचय ही पहली है जो साधारण जन-शुद्धि से उच्च स्तर की है । वैदिक युग में ब्रह्मोन्मत्त अनुष्ठानिक क्रिया का अर्थ समझ जाता था । अन्य देशों में भी पहिलियों को अनुष्ठानिक महत्ता प्राप्त थी । अथर्ववेद में प्रयुक्त ब्रह्मोन्मत्त से ज्ञात होता है कि पहिलियों का भी विकासोन्मुख व्यवस्था के साथ ही अथर्वानः विकसित हुए । पूर्व वैदिक काल के मौखिक साहित्य ने वेदों के निर्माताओं को अपनी महत्ता से आकर्षित किया, इसीलिए आज का हम लोक में प्रचलित इतना शुद्धिपरक साहित्य के विस्तार का अथर्वान

करते हैं तो कुत्तरा होता है। आदिवासी जातियों में पहेलियों का प्रचलन है। वैवाहिक अवसरों पर पहेलियों द्वारा परिवारों की बुद्धि-परीक्षा समान रूप से सभी प्रकार की जातियों में विद्यमान है। किन्हीं क्षेत्रों में आर्येतर जातियों में भी इसका प्रचलन था। कालान्तर की आर्येतर जातियों में यह प्रथा उन्नी तरह विद्यमान थी जिस तरह आर्य जातियों में है।

“पहेली लोकोक्ति है;” डॉ. मत्स्येन्द्र का कर्ण है। “लोकोक्ति देवता ब्रह्मकर्म ही नहीं है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इतिहास पहेली लोकोक्ति है। लोकमानस इसके द्वारा अर्थ-गौरव की रक्षा करता है और सम्बन्ध नहीं होता, प्रकृत को गोप्य करने की रक्षा करता है। यह से इतना पर निर्भर करती है।”

अब मैं प्रायः पहेलियों के आधार पर मत्स्येन्द्र की नौ उद्धृत बातें प्रस्तुत किया है—

१. लेनी सम्बन्धी
२. नीबू सम्बन्धी
३. परेणू बलु सम्बन्धी
४. माखी सम्बन्धी
५. प्रकृति सम्बन्धी
६. अंग प्रत्यांग सम्बन्धी
७. अन्ध

उक्त बातों के अन्तर्गत बलुओं की सूची में प्रायः नौ सभी चीजें आ जाती हैं जिनका बीजान से रोबमर्त्य का सम्बन्ध है। साधारण-से-साधारण कस्तुरी पहेली की पकड़ से बची नहीं है। वित्त ही पहेलियों का निर्माण होता है। गाँव के बुद्धि बौरा की यह साधना करने वाली कस्तुरी नहीं है। “गाँव वाली को न सूँ मिले, न तुलसी, न बगीचा, न केहर उठाने सुगों से पत्नी आती दूर बात की इत बुभावदार तकली नहीं को सभी तक सुन्दरे

बही दिया। श्रुत्येद का यह वेक्या देहाती रूप में आब मी हमारे सामने है। तन्म और शिक्षित समाज के लिए, प्रार्थनीयों के पास यह अममोक्त निधि संकित है।”

पहेलियों का निर्माण करने वाली बुद्धि अपने ही अक्षय ही वस्तु है। बरन्परत-प्रचलित लोक-साहित्य के आत्मीय वातावरण में ठठक्य विकास होता है। उसके लिए इष्टि का वैसापन और उक्ति-वैचित्र्य तथा विनोद की माहकरी आत्मबल हैं। पहेली जैसे ती वस्तु का कबन होती है पर ठपमालों के सहारे उसे प्रस्तुत किया जाता है। अल्प संकेत लेकर सामने वाले से वस्तु का नाम पूछना वस्तुतः बुद्धि-परीक्षा के समाज ही व्यापार है।

साहित्य में प्रहेलिका अलक्षर का एक भेद है। अय-चमत्कार से सम्बन्धित यह साहित्य अमी अक्षयन के समाज में एक और विस्तृत पड़ा है। हिन्दी मराठी या अन्य भाषाओं में कुछक रूप से यहाँ-वहाँ कुछ पहेली साहित्य मिल जाता है। हिन्दी में ‘ग्राम-साहित्य’ (भाग ३) में विपाटीको में कुछ पहेलियाँ ही हैं, पर एकत्र रूप से कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है।

मराठीय भाषाओं में प्रहेलिका-साहित्य का सबसे अधिक और अक्षयन लोक-साहित्य के एक अंग को पुत्र करने का अभिप्राय-वाच्य एवं बुद्धि-विनात को बल से उभेगा, यह अक्षयवर्धनीय नहीं है।

## लोकवार्ता-शास्त्र-सम्बन्धी प्रकाशित सामग्री

[लोकवार्ता शास्त्र का अध्ययन करने के लिए प्रामाणिक सामग्री की सूची अत्यावश्यक है। श्री महाशय साहा द्वारा 'लोक-साहित्य-सम्बन्धी मास्ताब साहित्य की संक्षिप्त सूची' सम्मेलन पत्रिका (पौष शुक्ल प्रतिपदा, सन् २०१०, भाग ४०, संख्या १) में प्रस्तुत की गई है। इसके पूर्व हिन्दी में इस तरह का प्रयत्न नहीं हुआ। बंगला में मनसूखीन ने 'शासत्र' (१९४२) ग्रन्थ में ऐसी ही सूची दी थी। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने भी 'अधिका कौमुदी' (५वाँ भाग) में अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती और मराठी पुस्तकों की सूची दी है। किन्तु यह अर्ब हिन्दी में अधिक विस्तार से नहीं किया गया। इस अभाव की पूर्ति के लिए ऊपर उद्धृत सूचियों की पुस्तकों को प्रस्तुत सूची में सम्मिलित करते हुए अनेक नए पुस्तकों और सामग्री का निर्देश यहाँ किया जा रहा है। प्रस्तुत सूची में कितने पुस्तकों का अभाव सामग्री का उल्लेख किया गया है वह मुख्यतः भारतीय लोकवार्ता-शास्त्र से सम्बन्धित है बिनका सम्बन्ध अमासीय लोकवार्ता-शास्त्र से है उन्हें यहाँ सम्मिलित नहीं किया गया है। यह सूची पूर्ण नहीं है। मेरा अनुमान है कि अंग्रेजी में और भी पुस्तकें उपलब्ध हैं बिनका यहाँ कुछ नहीं किया जा सका। हिन्दी में राजस्थानी गीतों की एक पुस्तक मेरे देखने में आई थी, किन्तु उसके आगे-पीछे के पृष्ठ न होने से लेखक-प्रकाशक का पता न चल

लक्ष्य। बंगाली पुस्तकों की सूची-महारेण साहा के आधार पर है। उन्होंने क्रमिकी की वेबस ११९ पुस्तकों का चिह्न दिया है। यहाँ और भी पुस्तकें सूची में मिला ही मर हैं। गुडपत्ती की सूची अपूर्ण है। जो भी सामग्री अस्त भी, उक्त उपयोग क्रिया का लक्ष्य है। जैसे अनेक मापकों की सामग्री नहीं दृष्ट गर है, फिर भी सुविधा के लिए यह सूची उपयोगी है। इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। ]

## हिन्दी

- १ आर्षद, उक्तय के और संकल्पनाएँ : मोरपुरी ग्रामगीत
- २ अन्वेषणात्त रहस्य : रावस्थानी कदाचित्
- ३ हृत्प्रेषण उपाध्याय : मोरपुरी ग्रामगीत (२ भाग), हि ता० सं०, प्रयाग, सं० २ ००
- ४ उष्यान्त गुप्त : इमुपी को पार्श्व (भाग १), लोकवार्ता परिषद्, वीरभद्रा :
- ५ लंग बहादुर मानन : मुषाबूँडा, बाँकीपुर, १९५४
- ६ लैलापम माली : मारवाड़ी गीत-संग्रह
- ७ जमदीरनिह गेहलोत : मारवाड़ी ग्रामगीत
- ८ तारापन्द कोष्ठा : मारवाड़ी स्त्री-गीत संग्रह
- ९ हुयसाकर प्रकाशसिंह : मोरपुरी लोकगीतों में अन्वय रत्न, १९५०
- १० बेदेन्द्र तलवार्या : अरुंधी गायत्री है, रावस्थान प्रकाशन, दिल्ली
- ११ " : बीरे बही गंगा " "
- १२ " : बेला फूलों आधी रात, रावईत प्रकाशन, दिल्ली
- १३ " : वाक्य आने बोल, पणिया प्रकाशन, बर दिल्ली
- १४ नरीतम स्वामी : रावस्थान का दृष्टा, १९५५
- १५ अन्वेषण कथा : काश्मीर की लोक-कथाएँ, १९५२
- १६ विद्वत्पण्ड कथा : मारवाड़ी गीत, १९५२



- १७ पूष्पिनाथ बटुबेदी और हीराबाल कन्ठ : हमारे लोकगीत, पत्र छापा, १६५४
- १८ मदबहाल बैरय मारबाड़ी गीतमाला
१९. मन्मथदास : हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्पन्न, इलाहाबाद, १६५१
- २० मेनारिया : राजस्थानी मीलों की कहानियाँ
- २१ धनशाल मेहता : मासवी कहानियाँ, राजस्थान शोध संस्थान, उदयपुर
२२. रामहरनाथसिंह 'राधेश' मैथिल लोकगीत, हि सा० सं०, प्रयाग, संस्कृत १६६६
- २३ रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी (५वाँ भाग), हिन्दी मन्दिर प्रकाश, संस्कृत १६८५
- २४ रामनरेश त्रिपाठी : हमारा ग्राम-साहित्य, १६४०
२५. " : ग्राम-साहित्य, भाग १, १६५१
- २६ " : ग्राम-साहित्य भाग २, आत्मात्म एवम् कन्ठ, दिल्ली।
- ७ रामनरेश त्रिपाठी : मारबाड़ के मनोहर गीत, हि० सं०, प्रयाग, सं १६८७
- ८ रामनाथदास बपाम्पाय निमाड़ी लोकगीत, हि० सा० सं०, बन्धुपुर, १६४६
- ९ रामकिश, पाटीक, जयदेव स्वामी : बोला मारक प बूझा, काशी ना प्र सं०, १६६१
- १० राहुल शाहस्यदास आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीतों, पत्रा, १६५२
- ११ सख्यप्रदाय 'उदयोदय' : बापेली लोकगीत, कविता (वि प्र०), १६५४
- १२ ल बोधी : मेवाड़ की कहानियाँ, उदयपुर
- १३ बानुदेवदास अग्रवाल : पूषिबी पुत्र, दिल्ली, १६४६
- १४ विद्यावती 'केशिका' लोहागरीत, प्रयाग, १६५१
१५. चिन्मयदास बटुबेदी : कुन्देराप्रकाश की ग्राम-कहानियाँ

- ३६ शिवशहाय पत्रुदेवी : पापाय बघी, राबधमल प्रकाशन, दिल्ली  
 ३७ " : लीने की रिवा, पटना, १९५३  
 ३८ स्वामिपरब बुने लुलीसगरी लोकगीतों का परिचय, १९४०  
 ३९ स्वामि परमा : मासकी लोकगीत, इलाहाबाद, २००६  
 ४० " : मासकी और उद्यम साहित्य, दिल्ली, १९५४  
 ४१ " : मासकी की लोक-कथाएँ, दिल्ली, १९५४  
 ४२ ललायन की ए० : पंचाशी गीत  
 ४३ ललेन्द्र : ब्रह्म की लोक-कथाएँ, १९४०  
 ४४ " : ब्रह्म-लोक-साहित्य का अध्ययन, आगरा  
 ४५ सुकुमार पगारे लाल लिंगाजी, लखनऊ, १९४९  
 ४६ सुकरव पापीक एवं गद्यरति स्वामी उद्यमाल के प्रामगीत, भाग  
 १, दिल्ली, १९६०  
 ४७ सुकरव पापीक एवं गद्यरति स्वामी उद्यमालों लोकगीत, प्रयाग,  
 १९६३  
 ४८ सुकरव पापीक एवं गद्यरति स्वामी : उद्यमाल के लोकगीत (भाग  
 १-२), कलकत्ता  
 ४९ सुकरव पापीक एवं गद्यरति स्वामी : उद्यमाली बौद्ध, कलकत्ता  
 ५० श्रीचन्द्र शैल : विन्ध्यप्रदेश के लोकगीत, दिल्ली, १९५४  
 ५१ " : विन्ध्यप्रदेश की लोक-कथाएँ, दिल्ली, १९५३

### बंगला

- १ अण्णालुदीन : मलय समीक्षा
- २ आचार्य होलेनेर प्रकाशनी
- ३ फर, महेंद्रनाथ : रचना बनन ( अग्रहीत ), १९३९
- ४ काण्ठीर्य, कीरेपर : अमाला विद्या, १९३०
- ५ काण्ठीर्य अश्लिपी
- ६ बंगाल हविष्य : बाङ्गल यज्ञ

- ७ अंगारक हरिनाथ बापसाहेब पुंषि  
 ८ ,, : हिन्दुस्थानी प्रामाणिक  
 ९ ,, : हिन्दुस्थानी शौच्यीति  
 १० ,, : हासल उदात्त  
 ११ काबिलास, अनिल : बांगलार प्राचीन कर्म, १९५०  
 १२ युद्धप्रसाद दत्त : पद्य संगीत  
 १३ युद्ध, रामप्रसाद ( संघर्षकर्ता ) : प्रथमांश, १९१४  
 १४ गोरख विद्या, बंगीय साहित्य परिषद्  
 १५ चन्द्रकर्षी, कालीचरण : रावण राज्यमोहन  
 १६ चौधरी शौचिक धर्म ओ देवदेवी  
 १७ चासीकुटीन : स्कन्धी अंगार माठ  
 १८ ,, : रगला नावरे मन्त्रि  
 १९ ठाकुर, अक्षयीप्रसाद : बांगलार म्थ  
 २० ,, : मीकनेसन, बंगीय सा परिषद्  
 २१ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ : लोक साहित्य, १९१४ ( बंगाल )  
 २२ ,, : कन्द  
 २३ ,, : शिक्षा  
 २४ ठकुराणीय, काशीनाथ ( अत्र ) प्रथमांश, १०८३ ( बंगाल )  
 २५ दत्त, अक्षयकुमार : भारतीय साहित्य सम्प्रदाय, २ भाग  
 २६ ,, : महानिर्वाण उग्र, बंगाली संस्करण  
 २७ दत्त, मोलानाथ ( प्रथ ) : अक्षर कथा, १-७ अक्षर, १९४४  
 २८ दे सुशीलकुमार : बांगला प्रवाद, १९५२  
 २९ नाथ, शरदचन्द्र : बाङला गान, १९४९ ( बंगाल )  
 ३० नाथ, राजागोविन्द : वैठव्य चरितामृत  
 ३१ ,, : तारिखत दर्पण  
 ३२ पालित, हरिदत्त : अक्षर यन्त्रीय, १९१९  
 ३३ प्राचीन पुंषि विवरण, बंगीय साहित्य परिषद्

- १४ मद्राचार्य, ब्राम्हणोप : बंगाला मंगल काव्ये इतिहास, १९५१
- १५ मद्राचार्य मोहितलाल : हेमन्त योपूति
- १६ मन्सूर उरीन हाफ्मसि सम्प्र १, १९३०
- १७ " : हाफ्मसि ( लोच-संगीत-संग्रह ), १९४२
- १८ मारफ्ती संगीत
- १९ मित्र, दक्षिणारबन : टाकुर टाटार मुक्ति
- २० " : टाकुर मार मुक्ति
- २१ मुखोपाध्याय, बुर्गामति ( संग्रहकर्ता ) : डाक पुस्तके कथा, १९११
- २२ कृष्ण, मशीनरुवाक सहस्रिष्य साहित्य
- २३ कन्वोपाध्याय, वाक्यन्दर बंमबीष्वा
- २४ कन्वोपाध्याय, टाकालादान : बंगला इतिहास ( १२ भाग )  
१९२१ २४
- २५ कन्वोपाध्याय, पश्चिनाल : अठ ठपापन, १९२२
- २६ बंग माया को साहित्य ( अष्टम संस्करण ), १९५०
- २७ सरस्वती, बील-जन्त : अठ कथा सार
- २८ सरस्वत, पवित्र ( प्रकाशित ) बाटल गाय
- २९ लालू लक्ष्मीनारायण्य श्यङ्गाय
- ३० लाम्बिष्ठी, कलाकला किरबकिषालाय
- ३१ सेन, इनेरुचन्त्र : मस्मलतिह गीतिका ( पूर्वं बग गीतिका )
- ३२ " : गोपोचन्देर गाय
- ३३ सेन मुकुमार : बंगला साहित्ये इतिहास ( प्रथम अण्ड )
- ३४ सेन, द्विप्रमोहन मम्पुगे मारतीय साधनार बार ( ४ वि० )
- ३५ " : टाडू ( किरबमण्डी )
- ३६ " : कर्बार ( निरबमारपी )
- ३७ सेन, मिरीरुचन्त्र : वारसमाला
- ३८ इक, एनापुल : बंमि सफ्ती प्रम्यन

## गुजराती

- १ आचार्य बडीपय वा सर्वा
- २ अन्तिवाल शाह कारमीर भी लोककथाओं
- ३ गुजराती विद्या समा रज्जमाला, अहमदाबाद
- ४ वैराग्य प्रभाष ( विवेचनात्मक )
५. मन्वेरचन्द्र मेधाखो : लोक-साहित्य
- ६ " : रटिवासी रत्न ( १ भाग )
- ७ " : चुन्वड़ी ( २ भाग )
- ८ " : सौराष्ट्रणी रसभार ( ५ भाग )
- ९ " : सोरठी बहार रटिवा ( १ भाग )
- १० रसाला : प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह, १९२१
- ११ समदार्शंकर लालरांकर : भागर विनयो मा गान्ध्यामीत
- १२ परकम्मा ( विवेचनात्मक )
- १३ परिभ्रम्य ( विवेचनात्मक )
- १४ पंजीदार बाकिना सांसारिक रीतिरिवाजो एकीकरण : शिक्षा-विभाग,  
बड़ौदा
१५. पंज्या नाशिक : भी भाद्रिनाद बदकर भागर ब्रह्मण बाष्टिक वा  
रीति रिवाज
- १६ कुच : ठराली पंथना नीति बचबो
- १७ मोर मगत : कविता ( प्राचीन काव्यमाला ), १८९०
- १८ रसबल्लियार मेईया : लोकगीत
- १९ शाह, एच० एम० : टोला मारु, बम्बई, १९१४

## १८

- : अकुरुता भागवत : बानपद गीतें  
: कमलाचार्य देशपांडे : अपीरनेर बाह्म्य कर्वांत एनी यीतें, पुणे,

- १ असेलकर व थोरबहे : साहित्यार्थे मूलबन
- ५ गोरे, पा० प्र० : बर्हाही लोकगीते, यशमाला
५. मसली इन्डोकर : लोक साहित्यार्थे शेष, पुणर्गौन, सवारा, १६५१
- ६ वि० बा बोयी : लोक-कथा व लोकगीते
- ७ धनेयुक्त : स्त्री लोक ( दो माग )

उर्दू

- १ दीन महम्मद कुरठा : पंजाब दे हीरे
- २ रामराय एडवोकेट : पंजाब दे गीत, लाहौर
- ३ होश्राम : बिलोपीनाम, लाहौर, १८८१

पंजाबी

- १ अमृता प्रीतम पंजाब की आवाज, बनपुग, रिहली, १६५१
- २ बिन्धुपन्द मीगा अठली रंग-बर्ने गीत, अमृतसर, १६५६
- ३ देवेन्द्र सायाची : गीता
- ४ मसलम : रतकमान ( गुरु ), अमृतसर, १६००
- ५ हरमबन गिझानी पंजाब दे गीत ( देकनागरी ), अमृतसर

पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी सामग्री

- अकलितम ( अगस्त, १६५१ ) : 'हिन्दी के साहित्य क इतिहास में लोक-साहित्य —शिवमदन प्रसाद एम ए
- अमृता ( अगस्त, १६५१ ) : 'साहित्यिकी के प्रमगीत'—अन्याय विरमूरकर
- " (बनवरी, १६५५) : 'मराठीय लोक-साहित्य का विभाग'—रिलक
- " (बनवरी, १६५५) : 'आम्र देस की अधिका अधीक भावगीती में उमका निवात'—बैक्रेटर रासब्राह्म

- Russel R. V and Hiralal The Tribes and Castes of Central Provinces of India 1916.
- Russetti, D G. Ballades of Fair Ladies
- Ruth Sawyer The Way of Story Teller
- Sarat Chandra Mitra A Note on the Nepalese belief, Journal of E. & O R. S. Vol. XVII.
- Sarat Chandra Mitra Styapira Legends in Santhali Guise, do, Vol. XIII
- Sepkar G. G. Marathi Proverbs, Poona, 1872
- Sen Gupta P P Dictionary of Proverbs, Calcutta, 1899
- Sen, D. C. Eastern Bengal Ballads Mymen Sing. (Vol I VI)
- Sen D C. Folk literature of Bengal, 1920.
- " Glimpses of Bengal Life, 1925.
- " History of Bengali Language, Cal. Univ. 1911.
- Shahidollah Les Chantes Mysteques.
- Shakespeare J. Lushei Kuki Clan, 1912
- Shaw W Notes on the Thandon Kukis (J. of A.S. Vol. XXIV 1928, No L) Calcutta, 1929
- Sherreff, A. G. Hindi Folk Songs.
- Slater G. Dravidian Elements in Indian Culture 1924.
- Stack, E. The Mikirs 1908.
- Temple R. C. The Legends of the Punjab 1885
- Tbeothi, N. A. The Vaishnavas of Guzerat, 1908
- Thibaulton Dyer : The Folklore of Plants, 1889
- Thorenton, T S. Handbook of Lahore.
- Thurston E. and Rangachari, K. Castes and Tribes of Southern India Madras, 1909.
- Tod Annals and Antiquities of Rajasthan, C

1920.

- Toru Dutta Ancient Ballades and Legends of Hindusthan, 1882.
- Trisle C. P Origin of Religion.
- Tylor E. B. Primitive Culture 1903
- Vasu N N Early History of Mankind 1865
1911. Modern Buddhism in Orissa, Calcutta.
- Venkatswami, M. N The Folk tales of C. P in Indian Antiquary Nos. 24, 25, 26, 28, 30 31, 32
- Waddel Lamanism
- Wilson H H Religious Sects of the Hindus (Trubner 1862)
- Yusuf Hussain Mystic India in Middle Ages.



- Russel, R. V and Hiralal The Tribes and Castes of Central Provinces of India, 1916.
- Russetti, D. G. : Ballades of Fair Ladies
- Ruth Sawyer The Way of Story Teller
- Sarat Chandra Mitra A Note on the Nepalese belief. Journal of B & O R. S Vol. XVII.
- Sarat Chandra Mitra *Styapira Legends in Santhali Guise*, do Vol. XIII.
- Sapekar G. G. Marathi Proverbs, Poona, 1872.
- Sen Gupta, P P Dictionary of Proverbs, Calcutta. 1899
- Sen, D C. Eastern Bengal, Ballads, Mymen Sing. (Vol I VI)
- Sen, D C. Folk literature of Bengal, 1920.
- " Glimpses of Bengal Life, 1925
- " History of Bengali Language, Cal Univ 1911.
- Shahidullah Les Chantes Mysteques.
- Shakespeare, J Lushel Kuki Clan, 1912.
- Shaw W Notes on the Thandon Kukis (J of A.S.B., Vol. XXIV 1928 No. 1.) Calcutta, 1929
- Sherreff A. G. Hindi Folk Songs.
- Slater G. Dravidian Elements in Indian Culture, 1924.
- Stack, E. The Mikirs 1908.
- Temple, R. C. The Legends of the Punjab, 1865.
- Thoothal, N A. The Vaishnavas of Guzerat, 1935.
- Thibaulton Dyer The Folklore of Plants, 1889.
- Thoreston, T S. Handbook of Lahore.
- Thurston E. and Rangachari, K. Castes and Tribes of Southern India, Madras, 1909
- Tod Annals and Antiquities of Rajasthan, Oxford,